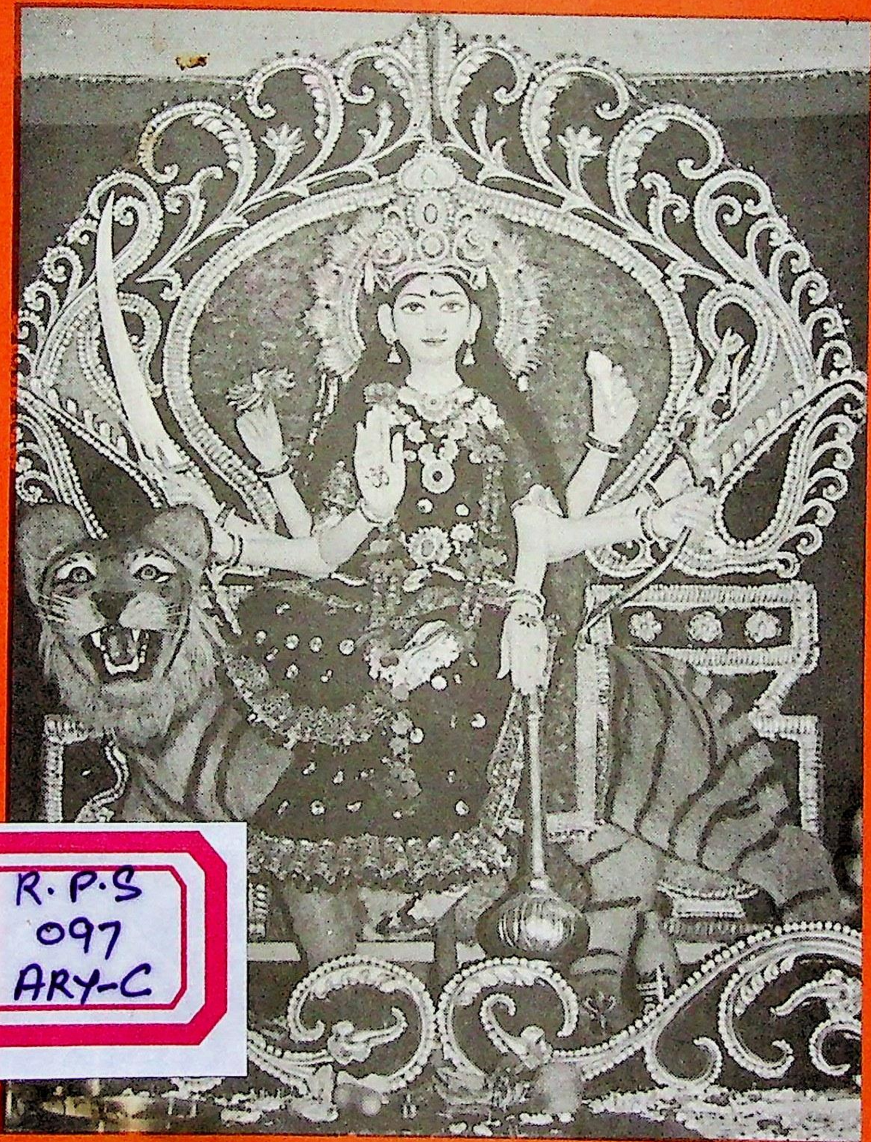
'चण्डी-चरित्र'

(महाकाव्य)



डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र

परम श्रद्धेय डॉ॰ रामस्वरूप जी आर्य
को सादर 'सश्रद्ध' अर्पित'

[illegible]
२५।२।९८

'चण्डी-चरित्र'

(महाकाव्य)

डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र
एम.ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), एल.टी., पी-एच.डी.
हिन्दी- विभागाध्यक्ष
शास. कुसुम महाविद्यालय सिवनी मालवा
होशंगाबाद - म.प्र.

संगीता- प्रकाशन, ५७ मोहतिशम खां पीलीभीत - उ.प्र.

आवरण: नवशक्ति दुर्गामण्डल, बानापुरा (सिवनी मालवा) के सौजन्य से साभार।

प्रथम संस्करण - १९९६

प्रकाशक : संगीता - प्रकाशन, ५७ मोहतिशम खां
पीलीभीत (२६२००१) उ.प्र.।

मूल्य : ६०.०० (साठ रुपये) मात्र

मुद्रक : आदर्श प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, भोपाल

Chandi - Charitra By Dr. Krishna Gopal Mishra
Price - 60 Rs. Year 1996.

अनुक्रम

समर्पण

कवि-जगत में एक धारणा है कि किसी महाकाव्य की समाप्ति पर किसी प्रियजन की मृत्यु होती है। पं. श्याम नारायण पाण्डेय ने 'जौहर' में (सूची से पूर्व) तथा श्री रघुवीर शरण मित्र ने 'जननायक' में (पृष्ठ-१) इस तथ्य को स्वीकार किया है।

अब इसे संयोग कहूँ; विधि का विधान मानूँ अथवा कवि जगत का पूर्वोक्त कटु-यथार्थ – २६ जनवरी; १९९६ को मध्यान्ह में इस काव्य का सृजन कार्य सम्पन्न हुआ और उसी तिथि को रात्रि के प्रथम प्रहर में मेरी आदरणीया वत्सला सास श्रीमती हँसमुखी देवी अकस्मात छत से गिरकर आहत हुईं तथा भोर की प्रथम-किरण फूटने से पूर्व ही लौकिक - बन्धनों से मुक्त होकर विराट् - ब्रह्माण्ड में विलीन हो गयीं। वे भी भगवती-दुर्गा की अनन्य-उपासिका थीं और इस रचना के समापन के साथ ही अनंत शक्ति में लीन हुईं; अत· मैं यह काव्य-कृति उन्हीं की पावन-सुस्मृति को उनकी प्रथम पुण्यतिथि पर निम्नांकित पंक्तियों के साथ अश्रुपूरित नेत्रों और कम्पित करों से सादर समर्पित करता हूँ –

ज्योति-सी जल जगमगाकर
स्नेह-कन हम पर लुटाकर,
खो गयी नीले-निलय में
भक्ति, जो उसको समर्पण।
प्रात-नभ की तारिका-सी
दृग्-पटल से सारिका सी
जा छिपी सब छोड़ सहसा
शक्ति, जो उसको समर्पण।

— डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र

'चण्डी चरित्र' - एक अनुशीलन

पौराणिक-आख्यानों ने भारतीय-कवियों को उत्कृष्ट-वर्ण्य-विषय के साथ-साथ तदनुकूल उदात्त भाव-भूमि देकर सदा से उपकृत किया है। प्रस्तुत महाकाव्य 'चण्डी-चरित्र' भी इसी श्रृंखला में 'श्रीमार्कण्डेय पुराण' के 'सावर्णिक मन्वन्तर' में वर्णित 'देवी-माहात्म्य' पर आधारित है। इसमें जगजननी दुर्गा के देवताओं की आराधना से द्रवित होकर प्रादुर्भूत होने और शुम्भ-निशुम्भ आदि असुरों का विनाश करके दैवी-शक्तियों के पुनः प्रतिष्ठित करने की कथा का सुललित वर्णन हुआ है। यह वर्णन सर्वत्र विश्व-कल्याण हेतु विनियोजन का उद्घोष करता है। महाशक्ति का अवतरण और उसकी लीलाओं की यह पावन-गाथा ज्ञान-भक्ति-कर्म व शौर्य की वह पुण्य सलिला भागीरथी है, जिसमें अवगाहन कर मानव-मन निश्चय ही त्रिविध-तापों से मुक्त होकर शान्ति का अनुभव करेगा।

यद्यपि 'चण्डी-चरित्र' पौराणिक-आख्यान पर आधारित है, तथापि इसमें कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा और मौलिकता का योग स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। इस रचना का भाव-पक्ष अत्यन्त सबल है। रस-योजना की दृष्टि से यह नयी कविता के इस युग में सर्वथा महत्वपूर्ण महाकाव्य है। कवि ने वीर-रस के साथ भक्ति-रस का अद्भुत-चित्रण इस कृति में किया है। वर्णन की दृष्टि से कवि ने जिस प्रसंग को भी छुआ है, उसे नवीन सौन्दर्य से युक्त कर दिया है। काव्यकृति के प्रारम्भ में वर्णित प्रकृति चित्रण जितना उल्लासमय है, तृतीय सर्ग में वर्णित युद्ध का प्रसंग भी उतना ही रोमाञ्चक है। रचना में पग-पग पर कवि की भक्ति पूर्ण दृढ़ आस्था के दर्शन होते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में कवि का विश्वास देखते ही बनता है -

"करेंगी भगवती कल्याण निश्चित
न संशय कभी करना इस कथन में।
महा महिमामयी वे जगत-जननी
सदा हितकारिणी हैं त्रय-भुवन में॥" पृष्ठ २०

भाव-पक्ष के समान ही इस महाकाव्य का कलापक्ष भी अत्यन्त सशक्त है। इसकी भाषा संस्कृत-निष्ठ तत्सम-शब्द बहुला खड़ी बोली है। कवि ने तद्भवों और देशज शब्दों का प्रयोग इस रचना में अपवाद रूप में ही किया है। कहीं पर भी भाषा का प्रवाह बाधित नहीं हुआ है। भाषा सर्वत्र भावों का अनुगमन करती दिखायी देती है। महादेवी दुर्गा की स्तुति से सम्बद्ध छन्दों में उपमा-उत्प्रेक्षा - रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का आश्रय लेकर कवि ने अपनी कल्पनाशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है।

रण-प्रांगण में महाकाली के भैरव स्वरूप का वर्णन दृश्य-बिम्ब का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है -

"सूखी हुई थी मज्जा वदन की
अवशेष था पञ्जर-अस्थियों का।

विकराल मुख था फैला हुआ यों
मानो ग्रसेगा त्रैलोक पल में॥
रक्ताभ जिव्हा बाहर निकलकर
यों हिल रहं मानो पियेगी।
शोणित असुर दल का एक क्षण में
कराल आँखें अन्दर धँसी थीं॥" पृष्ठ ६०

इस महाकाव्य का छन्द-विधान भी सर्वथा वर्णन के अनुकूल है। छन्दों की विविधता और भावनुकूलता के कारण कृति की रसात्मकता में भी अभिवृद्धि हुई है। उदात्त भावपक्ष और चमत्कार पूर्ण कलापक्ष के साथ गुम्फित कवि की जीवमात्र के कल्याण की भावना कृति को और भाी अधिक स्पृहणीय बनाती है। 'याचना' सर्ग में प्रस्तुत कवि की यह उदात्त भावना अत्यन्त सामयिक है -

राजा करेंप्रजा पालन न्याय-पथ से
हो योग क्षेम सबका तेरी कृपा पा।
सारे द्विपद-चतुष्पद खग-मृग प्रकृति के
सुख से करें बसेरा गुण गान गायें॥- (पृष्ठ २०८)

शक्ति का शिवत्वगुण भूषित-शौर्य के साथ संयुक्त होने का यह संकेत भारतीय जीवन-पद्धति को मुखरित करता है और हमें अपनी महनीय संस्कृति से जोड़ता है। अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की पोषक उपयुर्क्त विचारधाराओं के आलोक से आलोकित यह महाकाव्य राष्ट्र-भाषा का युगानुरूप परिधान धारण कर अधिक लोक-ग्राह्य और जन-प्रिय हो सकेगा, ऐसा मुझे विश्वास है और मेरी कामना भी।

अन्त में मुझे यह सुखद तथ्य भी कथनीय प्रतीत होता है कि प्रिय डॉ. मिश्र अपने छात्र जीवन के माध्यमिक सोपानों में मेरे शिष्य रहे हैं। मैं उनकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा और रचना कौशल का अनुशीलन कर इस परिप्रेक्ष्य में स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। प्रस्तुत रचना विद्वद्जनों के मध्य समादृत हो, इसे अभीष्ट लोकप्रियता प्राप्त हो और इसके प्रणेता डॉ. मिश्र की प्रतिभा अनुदिन अभिनव यश का वरण करे। इसी कामना व आशीर्वचन के साथ मैं अपने कथन को यहीं विराम देता हूँ।

अनंत शुभकामनाओं के साथ -

समुत्कर्ष
१८२ - नई बस्ती
पीलीभीत - उ.प्र.
१४ सितम्बर, १९९६
(हिन्दी-दिवस)

डॉ. रामकुमार वर्मा
प्रान्तीय सचिव - भारत संस्कृत परिषद
एवम्
संस्थापक अध्यक्ष - भारत विकास
परिषद (यूनेस्को एसोशियेन)
पीलीभीत उ.प्र.

निवेदन

प्रत्येक भक्ति-युक्त-चित्त में अपने उपास्य के गुण-कथन की चाह होती है, जिसे प्रत्येक भक्त अपनी क्षमताओं की परिधि में रहकर व्यक्त करता है। भजन-कीर्तन की क्रियायें इसी चाव की पूर्ति का माध्यम हैं। मेरे मन में भी अपनी आराध्या भगवती दुर्गा के चरित-वर्णन की चाह थी, जो माँ-भगवती की कृपा से इस रचना के रूप में पूर्ण हुई है।

इस प्रबंध-रचना की कथावस्तु पूर्णतया 'श्रीमार्कण्डेय पुराण' के सावर्णिक मन्वंतर में वर्णित देवीमहात्म्य पर आधारित है। अधिकांश स्थलों पर श्लोकों का भावानुवाद ज्यों का त्यों स्वतः प्रस्तुत हो गया है। मैंने कहीं पर भी लेखनी की स्वच्छन्द गति को अवरुद्ध कर किसी निश्चित दिशा में नियोजित करने का प्रयास नहीं किया है। यह भक्ति-काव्य है; अतः मैंने इसमें अतिमानवीय-वर्णनों को भी यथावत वर्णित कर दिया है। ये वर्णन भक्त-हृदयों के पौष्टिक आहार हैं, तार्किक मस्तिष्क की चटपटी चाट नहीं, अतः तर्क के निकष पर भाव का परीक्षण करने वाले तार्किक जब इन वर्णनों की आलोचना करेंगे, तब भी मुझे आपत्ति नहीं होगी भक्ति के भावातिरेक के कारण इस रचना में मुझे सामयिक युग-बोध को प्रस्तुत करने का सुयोग भी नहीं मिल सका है।

संस्कृत की अज्ञानता के कारण असंख्य भक्तगण इस पौराणिक इतिवृत्त के रसास्वादन से वंचित रह जाते हैं। श्लोकों का हिन्दी-गद्यानुवाद कथा की सूचना तो देता है, किन्तु भक्ति भावना को उतनी तीव्रता से उद्वेलित नहीं कर पाता, जितनी तीव्रता से पद्यानुवाद करता है। पद्यबद्ध-वर्णन अपनी गेयता के कारण भी सहज स्मरणीय होते हैं। यदि यह काव्यकृति भक्तिभाव पूर्ण सहृदयों को यत्किञ्चित परितुष्टि भी दे सकी तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

इस काव्यकृति की पाण्डुलिपि देखकर जिन विद्वानों ने मेरा उत्साह बर्द्धन किया है, उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। इस संदर्भ में आदरणीय गुरुदेव डॉ. रामकुमार वर्मा एवं डॉ. शम्भु शरण जी अवस्थी की कृपा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके प्रकाशन व मुद्रण में अपना अमूल्य समय व सहयोग देने वालों में श्रद्धेय श्री श्रीराम पाराशर व अनुजवत प्रिय सुहृद श्री उमेश कुमार साकल्ले प्रमुख हैं। मैं इनके प्रति कृतज्ञता से नतमस्तक हूँ। साथ ही सुंदर मुद्रण के लिये 'आदर्श प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स' परिवार के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

कृति पर आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में-

विनीत
डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र

मधु-कैटभ-बध

कहो, कौन तुम? भटक रहे हो
दीन-हीन बन इस वन में।
किसे खोजते-फिरते हो यों
सुमन - सुवासित - नन्दन में॥
मरूथल के कुरंग से व्याकुल
इस तप-वन में आकर भी।
श्रान्त-क्लान्त-श्लथ-वदन तुम्हारा
प्रातः शशि-सी क्यों मुख- श्री?
तपोभूमि यह मेधा-ऋषि की
इसमें चिन्तायें कैसी?
जैसी शान्ति यहाँ विलसित है
और कहाँ होगी वैसी?
पल भर बैठो, थके बटोही!
अपनी व्यथा-कथा गाओ।
ओ अनन्त - पथ के पंथी!
क्या कष्ट तुम्हें है? समझाओ॥
देखो, कैसी राज रही है
हरी-भरी वनराजि यहाँ।
हँसते से प्रसून दिखते हैं,
पड़ जाती है दृष्टि जहाँ॥
कोमल-कलियाँ लुभा रही हैं
भूल रहे पथ मधुकर-दल।
जगती के इस मोह जाल में
शेष कहाँ रहता बुधि-बल॥
प्रकृति-परी की मोहक-सुषमा
जग-कण-कण पर बिखरी है।
सर्व शक्ति-सम्पन्न-देवि की
आभा उसमें निखरी है॥

इसके शान्त - सुखद - क्रोड में
पल भर तो विश्राम करो।
विस्मृत कर चिन्तायें सारी
सुख-जल से उर-कलश भरो॥
कहने-सुनने से कम होता
शोक-अनल का ताप सदा।
नयन-नीर बनकर ढल जाती
उर की पीड़ा यदा-कदा॥
रुको! रुको! हे श्रान्त-पथिक!
मत बाधाओं से घबराओ।
ज्ञान-सलिल में अवगाहन कर
शोक - मोह - भय बिसराओ॥

थका बटोही बैठ गया, सुन
आवाहन मृदु-वाणी का।
था प्रभाव तन-मन पर उसके
मायामयि कल्याणी का॥
मधुर-स्वरों के सुस्पन्दन ने
व्यथित-हृदय के तार छुये।
पथिक-प्रश्नकर्त्ता दोनों के
दो-दो दृग मिल चार हुये॥
बहने लगी व्यथा अन्तर की
शब्दों का आश्रय लेकर।
उमड़ पड़ी पीड़ा की गंगा
जिव्हा - गोमुख पथ गहकर॥

मंद-मंद वाणी में बोला
थका-बटोही - "मित्र! सुनो!
शोषित-पीत-पात तरुवर का
पृथक् शाख से मुझे गुनो॥

कल तक अलका पति कुबेर सम
धनपति था मैं वणिक् समाधि।
ठगा गया हूँ स्वजनों द्वारा
व्यथित कर रही चिन्ता-व्याधि॥
जिन पुत्रों ने वृद्ध समझकर
वित्त हरणकर दिया निकाल।
जिन परिवार जनों ने मुझको
बरबस आज किया बेहाल॥
उन सबके ही कुशल-क्षेम की
चिन्ता मुझे सताती है।
जिनके कारण हुई दुर्दशा
उनकी ही स्मृति आती है॥
तोड़ नहीं पाता मैं बन्धन
आहत होकर भी उनसे।
उनकी ही चिन्ता से व्याकुल
ठगा गया हूँ मैं जिन से॥
भटक रहा हूँ इस निर्जन में
तन में जलते प्रान लिये।
सब कुछ खोकर भी ममता की
मदिर-सुरा का पान किये॥
कभी सोचता हूँ क्यों व्याकुल
होता हूँ उनके हित मैं।
कूट-कूट कर भरी हुई है
निष्ठुरता जिनके चित में॥
चला गया जो द्रव्य हाथ से
उसकी चिन्ता क्या करना?
त्याग दिया जिन सबने मुझको
उनका क्या जीना-मरना?
छोड़ूँ उनकी चिन्ता करना
उर में अब वैराग्य भरूं।
निकल चुका जब मोह भँवर से
फिर क्यों उसमें पाँव धरूँ?

किन्तु दूसरे ही पल फिर से
बाधायें डँस लेती हैं।
'कैसे होंगे परिजन-पुरजन'
चिन्तायें ग्रस लेती हैं॥
कैसा होगा पशुधन मेरा
कैसा होगा संचित कोष?
कैसे होंगे पुत्र-पौत्र-चर
पाते तो होंगे परितोष?
कभी याद करते होंगे क्या
मुझे कभी वे निष्ठुर पुत्र?
कभी खोजते होंगे मुझको
क्या वे मेरे प्यारे पौत्र?
ये विचार कर हो उठता हूँ
मैं मृदु-भावों से विह्वल।
और तपोवन में आकर भी
रहता हूँ प्रतिपल व्याकुल॥
सोच रहा हूँ - कौन शक्ति वह
जो मुझको लेती है घेर।
बढ़ता जब वैराग्य-दिशा में
मन देती जग के प्रति फेर॥
मोहग्रस्त कर देती मुझको
आशा की डोरी से बाँध।
हर लेती जो ज्ञान-बुद्धि-बल
नित्य जगाकर सोती साध॥
अपनी व्यथा-कथा मैं सारी
सुना चुका अब तुमको मित्र!
प्रियवर! अब तुम भी तो खींचो
अपने दग्ध-हृदय का चित्र॥"

मौन हुआ जब वणिक्-पुत्र तब
कहने लगा प्रश्न-कर्ता-

"सुरथ नाम भूपति मैं जग में
रहा युगों तक अरिहन्ता॥
किया न्याय से पालन मैंने
बरसों तक जन का सुत सा।
तदपि भाग्य प्रतिकूल हुआ तो
होने लगी विपति बरसा॥
कोलाविध्वंसी क्षत्रियगण
अनायास रिपु-रूप हुये।
लड़ा वीरता से मैं फिर भी
आंर ही जय के स्तूप हुये॥
समरभूमि में जय - श्री खोकर
जब मैं लौटा अपने देश।
दैव विमुख था अतः वहाँ भी
पाया परिवर्तित परिवेश॥
सेवक - सेनप - सचिव सभी ने
वंचक बन सुख - नाश किया।
विजयमाल सें गर्वित अरि ने
आक्रान्त कर त्रास दिया॥
एक दिवस तब खिन्न-हृदय से
राज-कोष-पुर त्याग दिया।
मृगया के मिस चढ़ तुरंग पर
कानन-दिशि का ध्यान किया॥
यह महर्षि मेधा का आश्रम
देता दग्ध-हृदय को शान्ति।
ऋषिवर के उपदेश श्रवण कर
पाता हूँ अद्भुत-विश्रान्ति॥
फिर भी कभी-कभी स्मृति-झंझा
देती उर तरुवर झकझोर।
उठता जब तूफान हृदय में
गीली हो जाती दृग-कोर॥
गत-वैभव का आकर्षण जब
देने लगता आमन्त्रण।

तब संतप्त-हृदय पीड़ा का
करने लगता स्वतः वरण॥
भावों के सागर में जब-जब
उठती है उत्ताल-तरंग।
तब-तब मोहित हो उठता मैं
भरकर उर में मृदुल उमंग॥
और तुम्हारी तरह मित्र! तब
मैं करता सौ बार विचार।
कौन शक्ति है वह, जो जग में
खींच डुबाती है मँझधार॥
जगत्जाल में फँस जाने को
प्रेरित करती कौन मुझे?
जग-विरक्ति के शिवद - अंक से
कर्षित करती कौन मुझे?
बुद्धि-विवेक-युक्त होकर भी
मोहित क्यों होता हूँ मैं?
सुलझा हूँ, फिर क्यों उलझन में
फँसने को रोता हूँ मैं?
मित्र! तुम्हारी तरह मुझे भी
विरह-पीर तड़पाती है।
टूट चुके हैं जिनसे रिश्ते
उनकी याद सताती है॥
चिन्ता करता हूँ उस निधि की,
जो अब नहीं रही मेरी।
व्याकुल उसके प्रति, जो मम हित
मात्र मृत्तिका की ढेरी ॥
आओ! चलो! आज कहते हैं
ऋषि से शंकायें सारी।
शमित करेंगे जिज्ञासायें
वे भूतल - भव - भय - हारी॥"

चले समाधि-सुरथ दोनों तब
पूज्य ऋषि के निकट गये।
दिव्य-तपस्वी के दर्शन से
जगे हृदय में भाव नये॥
प्रस्तुत की शंकायें मन की
श्रद्धा - विनेय - युक्त होकर।
कहा ऋषीश्वर ने दोनो से
देता हूँ उत्तर सत्वर॥
बरस उठा वाणी क़ा बादल
झरे शब्द-मोती झर-झर।
मानस के मराल से दोनों
भरने लगे रिक्त अन्तर॥

कहा तपी ने- "तुम मोहित हो
जगदीश्वरि की माया से।
ठगे जा रहे हो पतंग से
जग-दीपक की काया से॥
मोह रही हैं तुम्हें भगवती
मायामयी योग- निद्रा।
खीच रही हैं चित्त तुम्हारा
वे ही कल्याणी-भद्रा॥
जग में जितने जीव-जन्तु हैं
ज्ञान-दृष्टि है सबके पास।
तदपि जगत के मोहजाल में
पड़कर पाते हैं सब त्रास॥
सब विवेक-बल-बुद्धि युक्त हैं
किन्तु प्रबल माया माँ की।
बार-बार सम्मोहित करतीं
दिखलाकर निज छबि बाँकी॥
जग का क्रम सुस्थिर रखने को
लिये घूमती हैं वे पाश।

निज भक्तों को अभयदान कर
कुटिल-खलों को देतीं त्रास॥
माता की महिमा अपार है
शक्तिमती वे सर्व-समर्थ।
मोह-जाल जब फैलातीं तब
हो जाता सब बुधि-बल व्यर्थ॥
वे ही जग की उद्भवकारिणि
वे ही जग की कल्याणी।
जब प्रसन्न होतीं जग-माता
तब निर्भय होते प्राणी॥
अत: उन्हीं का ध्यान धरो तुम
निर्भय रहकर सुख पाओ।
'जय-जननी जगदम्ब - भवानी'
मन्त्र जपो, महिमा गाओ॥''

तृषित-हृदय कुछ जल-सीकर पा
और अधिक फिर अकुलाये।
उमड़ पड़ी श्रद्धा अन्तर में
दोनों के दृग भर आये॥
करने लगे निवेदन ऋषि से
माँ की कथा सुनाने को।
जगत-जननि की पावन-गाथा
अपने सम्मुख गाने को॥
लगे पूछने- ''कौन भगवती
माया, जो मोहित करतीं?
बुद्धिमान-ज्ञानी-जन का भी
जो बरबस ही चित हरतीं?
कैसे हैं उत्पन्न हुईं वे
करती हैं कब-कहाँ निवास?
किस प्रकार होतीं प्रसन्न वे
पूरी करतीं उर - अभिलाष?

आज कृपा कर ऋषिवर कहिये
जग-जननी की महिमा को।
वर्णित करिये सबके सम्मुख
माँ की गौरव-गरिमा को॥''

भक्ति - भाव - विह्वल लख उनको
ऋषि ने सत्य-प्रेम जाना।
माँ की कथा श्रवण करने का
उनको अधिकारी माना॥
कहा तपी ने- ''दत्तचित्त हो
सुनो, कथायें कहता हूँ।
माँ-महिमा की विमल-धार में
मैं भी सुख से बहता हूँ॥
तुम भी शुद्ध-चित्त होकर अब
करो भक्ति-जल-अवगाहन।
शोक - मोह - भय - प्रीति - रीति तज
करो सुधामय- कथा - श्रवण॥

''एक बार जब महाप्रलय के
बाद बचा था जल ही जल।
समा चुकी थी संसृति जल में
शेष न था कोई भी थल॥
शेषनाग की शैय्या पर तब
अविनाशी आसीन हुये।
आवाहन कर योग-स्वरूपा
निद्रा में लय-लीन हुये॥
तभी शेष-शायी विभुवर के
श्रवण-रन्ध्र-मल से उद्भूत।
मधु-कैटभ संज्ञक दो दैत्य
साक्षात् अघ से अति धूत॥

सोता हुआ देखकर हरि को
करने लगे महा-उत्पात।
कमल-नाल-आसीन ब्रह्म की
हत्या-हित कुत्सित-आघात॥
भीत-त्रस्त हो उठे पितामह
देख-देख उनका उद्योग।
करने लगे विचार किस तरह
हो रक्षा का सफल प्रयोग॥
पल भर में प्रारम्भ किया फिर
योग-स्वरूपा माँ-वन्दन।
लगे जगाने जगदीश्वर को
कर निद्रा का अभिनन्दन॥

जननी! तेजस्वरूपा! तुम ही
जग की उद्भव - कारिणि हो।
तुम ही तो स्थिति-कर्त्ती सबकी
माँ! तुम ही संहारिणि हो॥
बसी हुई हो जगदम्बा! तुम
शक्ति-रूप बन विभु-तन में।
सर्वेश्वरी! तुम्हीं निद्रा बन
रमी हुई हो नयनों में॥
माता! तुम ही स्वधा-स्वरूपा
स्वर-रूपिणि स्वाहा तुम ही।
तुम जीवन-दायिनी - सुधा हो
प्रणव-रूपिणी माँ तुम ही॥
तुम ही संध्या-सावित्री माँ
तुम ही हो जननी जग की।
माता! तुम ही सृष्टि स्वरूपा
स्थिति- संहार हेतु सब की॥
विद्या - माया - मेघा - सुस्मृति
अम्बे! तुम ही मोहमयी।

तुम्हीं भगवती महासुरी हो
माता! तुम ही सर्व - जयी॥
तुम ही जननी प्रकृति-रूपिणी
सत - रज - तम - गुण धारिणि हो।
तुम्हीं भयंकर कालरात्रि माँ!
मोह - रात्रि भय-कारिणि हो॥
महारात्रि माँ! तुम्हीं ईश्वरी
श्री- ह्री तुम ही प्रज्ञा हो।
लज्जा - पुष्टि-तुष्टि-शान्ति तुम
तुम्हीं क्षमा-सर्वज्ञा हो॥
बोध-स्वरूपा बुद्धि तुम्हीं हो
तुम्हीं सौम्या हो जननी!
सबकी जीवन-शक्ति तुम्हीं हो
तुम ही हो अम्बर-अवनी॥
खड्ग - धारिणी! शूल-धारिणी!
गदा-चक्र धरने वाली।
माता! तुम ही धनुषधारिणी
सबका भय हरने वाली॥
वाण-भुशुण्डि- परिघ से शोभित
जननी! तुम्हीं ईश्वरी हो।
सर्व-समर्था! निद्रा-रुपिणि!
माँ! तुम ही अखिलेश्वरि हो॥
हरि-हर को मुझको हे माता!
तुमने ही तन-ज्ञान दिया।
माता! तुमने ही अग-जग को
तन-मन-धन सम्मान दिया॥
सुनो शीघ्र विनती माँ! मेरी
मोहित करो असुर-द्वय को।
नारायण को कर प्रबुद्ध अब
दो माँ! अभयदान मुझको॥

सुन कर ब्रहमा की पुकार माँ
प्रकट हुई प्रभु के तन से।
नयन - वदन - नासिका - बाहु-उर
से निकलीं हर्षित हो के॥
खड़ी हो गयीं साक्षात् फिर
ब्रह्मा के सम्मुख पल में।
जाग गये हरि मुक्त हुये जब
जननी के बल-वैभव से॥
त्याग शेष-शैय्या उठ बैठे
नारायण रण करने को।
अपने अद्भुत - बल- विक्रम से
असुरों का मद हरने को॥
पाँच-सहस्त्र वर्ष तक श्री-हरि
करते रहे तुमुल-संग्राम।
पर अत्यन्त शक्ति - मद - आकुल
असुरों ने न किया विश्राम॥
तब भगवती महामाया ने
पल में मोहित किया उन्हें।
जो अब तक अजेय थे रण में
था बल का अभिमान जिन्हें।
कहने लगे विष्णु से दोनों —
''वर माँगो हम हैं सन्तुष्ट।
तृप्त हुये हम समर-भूमि में
देख तुम्हारा बल-सम्पुष्ट॥''
कहा विष्णु ने तब असुरों से —
''दो मुझको जय का वरदान।
मेरे हाथों मृत्यु वरण कर
दे दो विधि को जीवनदान॥''
पल भर रहकर मौन, विष्णु से
असुरों ने ये बात कही—
''मारो हमको वहाँ, जहाँ पर
होवे जल से हीन मही॥''

तब तथास्तु कह नारायण ने
जंघा पर धर उनके रूण्ड।
तीक्ष्ण-चक्र से तत्क्षण काटे
मधु-कैटभ दोनों के मुण्ड॥
नाश हुआ यों मधु-कैटभ का
आद्य-शक्ति के सम्बल से।
सुखी हुये ब्रह्मा-हरि दोनो
माता के अतुलित-बल से॥

जननि की अतुल-महिमा - मय कहानी
सुनाता हूँ, सुनो तुम ध्यान धरकर।
कथा अब कह रहा दूजे चरित की
भरो श्रद्धा, हृदय में भाव भरकर॥

झुकाओ शीश माँ के कमल-पग पर
सरल-शुचि-भावमय दीपक जलाओ।
जहाँ पर भीतियाँ भव की डरायें
वहाँ सच्चे हृदय से 'माँ' बुलाओ॥

'करेंगी भगवती कल्याण निश्चित'
न संशय कभी करना इस कथन में।
महा-महिमामयी वे जगत-जननी
सदा हित - कारिणी हैं त्रय-भुवन में॥''

प्रादुर्भाव

सहस्रों-वर्ष पूर्व जब हुआ
धरा पर देवासुर- संग्राम।
निरन्तर सौ-वर्षों तक मिला
न दोनों को किंचित-विश्राम॥
जूझते रहे महिष से इन्द्र
बचाने को अपना अस्तित्व।
तदपि दुर्दम्य-दैत्य से देव
नहीं रक्षित रख पाये स्वत्व॥
जयी हो गया असुर-अधिराज
पराजित हुई पुरन्दर-शक्ति।
स्वर्ग के कण-कण पर हो गयी
जयी-महिषासुर की अनुरक्ति॥
मिले असुरों को सब अधिकार
बहिष्कृत हुये स्वर्ग से देव।
आ गयी दुराचार की बाढ़
हुये भू पर पीड़ित भू-देव॥
इन्द्र-पद पर पाकर अधिकार
हो गया महिषासुर मदमत्त।
मिटाने लगा सृष्टि की लीक
अहंकारी - पापी - उन्मत्त॥
प्रजापति - ब्रह्मा के संग देव
चले तब उस सुस्थल की ओर।
जहाँ पर थे हरि-हर आसीन
दान करने को सुखमय भोर॥
झुकाकर उन दोनों को शीश
कही देवों ने मन की पीर।
शत्रु के बल-वैभव का वृत्त
कहा भरकर नयनों में नीर॥

निवेदन किया- "प्रभो! हम आज
हुये हैं सभी भाँति अति दीन।
भटकते फिरते भू पर सतत
अकिंचन - क्षीण-वीर्य बल-हीन॥
सूर्य - शशि - अग्नि - इन्द्र - यम - वरुण
सभी के हर कर सब अधिकार।
निरंकुश शासक बनकर महिष
कर रहा जग पर अत्याचार॥
सभी विधि होकर हम निरुपाय
हुये हैं शरणागत प्रभु आज।
आप अब कर कुछ सफल उपाय
बचायें सुर-समूह की लाज॥
यही करबद्ध विनय है देव!
करें महिषासुर का संहार।
जगत की सुख-शान्ति के लिये
दिलायें देवों को अधिकार॥"

श्रवण कर सुरगण-आर्त्तनाद
देखकर शरणागत का कष्ट।
जानकर महिषासुर दुर्वृत्त
हुये हरि-हर दोनों अति रुष्ट॥
काँपने लगी क्रोध से देह
हो गये पाँचो लोचन लाल।
हुई मुख-मुद्रायें अति पीन
तनीं बंकिम भृकुटियाँ कराल॥
मचलने लगी भुजों में शक्ति
जगा जब उर में भीषण-क्रोध।
हुये व्याकुल हरि-हर के प्राण
महिष से लेने को प्रतिशोध॥
विष्णु के वक्र-वदन से वहाँ
कढ़ी ज्वाला- कराल - विकराल।

प्रजापति - इन्द्र - रुद्र इत्यादि
सभी से प्रकटी तत्क्षण ज्वाल॥
हुई ज्वालायें एकाकार
जगत में उपजी शक्ति-अपार।
मिटाने को भूतल का भार
लिया जगदम्बा ने अवतार॥
संगठित देवशक्ति का पुञ्ज
मिटाने लगा दिशा-तम-तोम।
ज्वलित - जागृत - ज्योतित बल-पुञ्ज
लगा करने उद्भासित व्योम॥
दिखा देवों को जैसे हुआ
प्रकट जाज्वल्यमान - नगराज।
जगत् में महत् तेज का पुञ्ज
दिशाओं में व्याप्त था आज॥
सर्वथा अनुपमेय था तेज
प्रकट था जो अब दृष्टि समक्ष।
संगठित शक्ति-पुञ्ज बल - रूप
हुआ था अब जग में प्रत्यक्ष॥
वही संगठित तेज की राशि
धार कर नारी का शुभ-रूप।
व्याप्त कर दिव्य-तेज से लोक
हुई कल्याणमयी प्रतिरूप॥
महेश्वर शंकर का शिव तेज
बना उस नारी तन का वदन।
अलौकिक आभा से सम्पन्न
हो उठा तत्क्षण भूतल-गगन॥
उगे यमराज तेज से केश
विष्णु के बल से बाहु-विशाल।
चन्द्रमा से सुस्तन-द्वय बने
अनल से प्रकटे नयन-कराल॥
पुरन्दर-अंश बना कटिभाग
वरुण का तेज बना उरु-देश।

धरा से निर्मित हुये नितम्ब
प्रजापति से शुभ-दसन- प्रदेश॥
बने ब्रह्मा से दोनों चरण
सूर्य से प्रकटीं अंगुलि-माल।
रचीं वसुओं के बल ने शीघ्र
पाणि-पल्लव- अंगुलि तत्काल॥
बनीं भौहें संध्या का भाग
पवन से प्रकटे दोनों कान।
नासिका अलकापति का अंश
हुआ यों नारी - रूप - विधान॥

देखकर वह उज्ज्वल शिव रूप
हुये हर्षित देवों के प्राण।
जगी आशा, जागा विश्वास
असुर से होगा अब परित्राण॥
पिनाकी शंकर ने तत्काल
निकाला एक शूल-विकराल।
किया अर्पित देवी के हाथ
बेधने को खल - देह - विशाल॥
विष्णु ने चक्र, वरुण ने शंख
अग्नि ने सौंपी शक्ति-प्रचण्ड।
वायु ने धनुष-वाण-तूणीर
दिया यम ने अति दारुण-दण्ड॥
इन्द्र ने बज्र भेंट में दिया
हो सके जिससे महिष-विनाश।
चण्ड-घण्टा भी अर्पित किया
हरे जो भक्त - जनों का त्रास॥
कमण्डलु किया ब्रह्म ने भेंट
प्रजापति ने दी स्फटिक सुमाल।
चमकती हुई ढाल के साथ
काल ने भी सौंपी करवाल॥

वरुण ने जग-जननी को दिया
स्वयं अपने हाथों से पाश।
मिले जिससे अग-जग को अभय
भरे जो खल-दल में संत्रास॥
सूर्य के अतुल तेज से युक्त
हुये दैदीप्य देवि के रोम।
देह से फूट पड़ा आलोक
प्रकाशित करने को भू-व्योम॥
दिव्य - चूड़ामणि - कुण्डल - कड़े
विमल - निर्मल - नूपुर स्वर-पूर।
समुज्ज्वल-अर्द्ध चन्द्र - गलमाल
रत्न-मण्डित मुँदरी - केयूर॥
सजाकर आभरणों का थाल
क्षीर सागर आया तत्काल।
जगत्जननी को देकर भेंट
कृपा माँ की पा हुआ निहाल॥
आभरण - दिव्य - वसन सब सौंप
क्षीर सागर ने पायी तुष्टि।
विश्वकर्मा ने भी दे परशु
सुशोभित करी मातु की मुष्टि॥
असंख्यक - अस्त्र अभेद्य-कवच
समर्पित किये गये उस काल।
ग्रहण कर सुर-समूह से भेंट
सज उठी माँ की मूर्ति-विशाल॥
जलधि ने दिया सुशोभन कमल
हिमालय ने वाहन वनराज।
कौन वर्णन करने में दक्ष
कहे जो जननी के सब साज?
शेष ने नागहार दे किया
देवि की ग्रीवा का श्रृंगार।
यक्षपति ने मधु-पूरित पात्र
समर्पित किया दिव्य - उपहार॥

हुई यों देवी की उत्पत्ति
जगत का करने को कल्याण।
पाप- संताप - शोक कर नष्ट
सभी का करने को परित्राण॥

अतुल-बलवती भगवती देवि
रोष से भरकर कर हुंकार।
केहरी के कन्धे पर बैठ
चलीं करने खल-दल संहार॥
दिशायें उठीं शोर से डोल
कँपे अवनी-अम्बर के छोर।
गरजकर सिंहनाद कर मातु
चलीं जब महिषासुर की ओर॥
भयंकर अट्टहास की गूँज
लगी भरने अम्बर में शोर।
कँपाने लगा धरा का हृदय
केहरी का घन-गर्जन घोर॥
धरातल पर आया भूडोल
सागरों में अति भीषण-ज्वार।
गगन की सीमायें लघु हुईं
मचा जब जग में हा-हाकार॥
हुये तब प्रमुदित सुर-नर-वृन्द
देख देवी की शक्ति-अपार।
देव-ऋषि विनती करने लगे
हुई जननी की जय-जय कार॥

देख देवी का अतुल प्रभाव
हुये भयभीत आसुरी-तत्व।
शीघ्र हो गये संगठित दैत्य
अरक्षित लख अपना अस्तित्व॥

असुर-परिवृत खल दानव-राज
दौड़कर चला तुरत उस ओर।
जहाँ थी सिंहनाद की गूँज
खड़ी थीं आद्य शक्ति जिस ठौर॥
महिष ने देखा अद्भुत-दृश्य —
खड़ी है एक शक्ति विकराल।
प्रभा से भासित कर त्रैलोक
दीप्त हो जैसे विद्युत-ज्वाल॥
पदों से नीचे का भू-लोक
दबा जाता सह दुर्बह-भार।
खिंची नभ में किरीट की रेख
अपरिमित कर अपना विस्तार॥
सहस्त्रों बल पूरित भुजदण्ड
कर रहे आवृत सकल दिगन्त।
दैत्यदल समझ न पाया भेद
कहाँ है आदि, कहाँ है अन्त?
भगवती अति प्रचण्ड-कोदण्ड
रहीं थीं बार-बार टंकार।
काँपते थे त्रिभुवन सुन शब्द
क्षुब्ध होते थे पारावार॥
देख देवी का दिव्य-प्रभाव
चकित हो उठा दैत्य-समुदाय।
लगा करने फिर भीषण युद्ध
समझ रक्षा का सरल उपाय॥

चमकने लगे गगन में शस्त्र
छूटने लगे करों से अस्त्र।
लगीं कटने दनुजों की देह
फटें जैसे अति-जर्जर-वस्त्र॥
छिड़ा उसकाल समर विकराल
घिरीं जगदम्बा खल-दल बीच।

लगे भू पर लाशों के ढेर
चतुर्दिक् हुई रुधिर की कींच॥
चमूपति चिक्षुर करने लगा
द्वन्द्व-संग्राम देवि के साथ।
संगठित कर चतुरंगिणि सेन
लगा चामर दिखलाने हाथ॥
रथी ले संग में साठ-सहस्र
भिड़ गया आकर दैत्य उदग्र।
कोटि स्यन्दन-पतियों के साथ
महाहनु हुआ समर में उग्र॥
तीक्ष्ण-रोमावलि संयुत-दैत्य
वीर अतिलोमा अति विकराल।
साथ ले पाँच-कोटि रथराजि
लगा करने संगर तत्काल॥
वाष्कल साठलाख रथ साज
उपस्थित हुआ युद्ध के लिये।
देह-बल-वैभव- मद से मस्त
समर की मादक मदिरा पिये॥
सजाकर पाँच-अरब रथ शूर
बढ़ा रण में बिडाल हुंकार।
असंख्यक मत्त-दैत्य उस काल
रहे थे देवी को ललकार॥
सहस्रों महादैत्य रथ-वाजि
सजाकर मतवाले गजराज।
हुये उस काल समर में व्यस्त
सुरक्षित कर अपना अधिराज॥
बरसते थे देवी पर अस्त्र
भयंकर उपल-वृष्टि की भाँति।
किन्तु वे करतीं विफल प्रहार
काटकर असुर बलों की पाँति॥
परशु - पट्टिश - तोमर - करवाल
खींच देते दामिनि सी रेख।

शक्ति - मूसल - हल - बज्र - कृपाण
लिख रहे थे संगर के लेख॥
दैत्य करते थे कठिन प्रहार
उठा कर में खरतर तलवार।
कर रहे थे बहु-विधि-उद्योग
किसी विधि दें देवी को मार॥
किन्तु देवी माँ भी उस काल
हो रहीं थीं दाहक अंगार।
धधकती-ज्वालाओं का पुञ्ज
क्रोध की मूर्ति थीं साकार॥
शत्रु के शस्त्रों की बौछार
विफल होती थी बारम्बार।
लहर टकराकर जाती लौट
देख ज्यों पथ में अडिग प्रहार॥
भयंकर गर्जन-तर्जन घोर
भयानक भीषण तम पविपात।
अचल चट्टान सदृश जगमात
रहीं सहतीं पल-पल आघात॥
समर में क्रीड़ा सा आनन्द
ले रही थीं जग-जननी आज।
लुटी जाती थी रण-थल मध्य
दानवों के पौरुष की लाज॥
देवि के सौम्य-मुख पर शेष
नहीं थी रण की रञ्च-थकान।
देवता-ऋषिगण हो सन्तुष्ट
निरन्तर करते थे जयगान॥
भगवती परमेश्वरि के शस्त्र
काटते जाते थे दनु-देह।
सहस्रों-भुजदण्डों से वाण
बरसते ज्यों सावन के मेह॥
सघन कानन में जैसे आग
जला देती है अगणित वृक्ष।

समर में वैसे ही वनराज
फाड़ता था असुरों के वक्ष॥
युद्ध-रत अम्बा के उच्छ्वास
बन रहे थे अगणित-गण-वीर।
भगवती की कर जय-जयकार
रहे थे असुरों का दल चीर॥
हृदय में भर जय का उन्माद
बजा रण - भेरी - शंख - मृदंग।
समर उत्सव में करके नृत्य
प्रकट करते उल्लास उमंग॥
जगत जननी के बल की थाह
कौन सकता है जग में माप?
मिटाकर जो जगती का पाप
हरण करती थीं सुर-संताप॥
किसी को खर कटार से चीर
किसी पर डाल भयंकर पाश।
किसी की छाती पर धर पाँव
लगीं करने वे खल-दल नाश॥
हुये कितने खर-शर से बिद्ध
कटे कितनों के तन से अंग।
लुटे कितनों के प्यारे प्राण
हुआ कितनों का बल-मद भंग॥
दबे कितने लाशों के बीच
तजे कितनों ने तन से प्राण।
हुये कितने माँ से भयभीत
मिटे कितने खा उर पर वाण॥
दानवों की वह अगणित सेन
हो चली अल्पकाल में नष्ट।
स्वयं बन गयी कष्ट पर्याय
सुरों को देती थी जो कष्ट॥
काष्ठ का, तृण का भारी ढेर
जला देती ज्यों पल में अग्नि।

भगवती दुर्गा ने तत्काल
किया त्यों दानव-दल मद-भग्न॥
देवि - उच्छ्वासों से उत्पन्न
गणों ने कर भीषण-संग्राम।
किया ब्रह्माण्ड दैत्य-दल-हीन
दिया खल-दल को चिर-विश्राम॥
भवानी — वाहन ने हो क्रुद्ध
फाड़ डाले दनुजों के वक्ष।
चीर कर तीक्ष्ण-नखों से दैत्य
किया बलहीन महिष का पक्ष॥
अन्त में बची जरा सी सैन्य
भगवती से करने को युद्ध।
क्षीण-बल हुआ, तदपि अभिमान
महिष को करता था अति-क्रुद्ध॥
देख दनुजों की सेना नष्ट
मुदित थे देव-वृन्द उस काल।
गगन से पारिजात के पुष्प
देवि पर देव रहे थे डाल॥
मिट चुकी थी असुरों की सेन
तदपि था शेष तुमुल-संग्राम।
खड़ा था महिषासुर रण - बीच
अड़ा हो ज्यों सदेह अभिमान॥

सुनों अब द्वन्द्व-रण की भी कहानी।
हुईं जैसे जयी जग में भवानी॥
गये दानव-अधिप के प्राण जैसे।
हुआ त्रयलोक का परित्राण जैसे॥
कथा वह कह रहा हूँ भाव भरकर।
श्रवण करना कहानी ध्यान धरकर॥

* * *

महिषासुर-बध

देखकर सेना का विध्वंस
सैन्यपति चिक्षुर कर अति-क्रोध।
गरजकर चला मूढ़ तत्काल
देवि से लेने को प्रतिशोध॥
लगा खल बरसाने यों वाण
धनुष निज बार-बार टंकार।
तड़कती शंपाओं के साथ
धरापर झरती ज्यों जलधार॥
देवि ने खल के सभी प्रहार
कर दिये निष्फल बिना प्रयास।
रोक उसकी भीषण शर-वृष्टि
कर दिया उसका स्यन्दन नाश॥
अश्व-रथ-सारथि सब कुछ काट
किया कोदण्ड देवि ने खण्ड।
भग्न कर फहराती रथ-ध्वजा
चलायी अपनी शक्ति-प्रचण्ड॥
देख जननी की अतुलित शक्ति
देख अपना हय-स्यन्दन नष्ट।
देख आसन्न मृत्यु तत्काल
हुई चिक्षुर की सब मति भ्रष्ट॥
उठाकर ढाल और तलवार
दौड़कर चला देवि की ओर।
किया केहरि के सिर पर वार
कँपा कर दिग्दिगन्त के छोर॥
जगत जननी पर करे प्रहार
कौन है इतना सबल-समर्थ।
देवि पर किया असुर ने वार
हुई तब खड्ग टूटकर व्यर्थ॥

देख यों अपना विफल-प्रहार
हुये चिक्षुर के लोचन लाल।
रोष में भरकर कर हुंकार
निकाला उसने शूल-कराल॥
लक्ष्य कर जगदम्बा की ओर
शूल फिर दिया दुष्ट ने फेंक।
गगन उद्भासित यों हो उठा
उगे हों मानों सूर्य अनेक॥
भगवती ने भी तत्क्षण शूल
पुष्ट कर से फेंका हो तुष्ट।
हुआ अम्बर में भीषण-शब्द
गया तब काँप चमूपति दुष्ट॥
गिरी चिक्षुर के तन पर तड़ित्
फाड़ रण का लोहित- आकाश।
हुये खल के तन के शतखण्ड
किया दुर्गा ने भीषण हास॥
मिटा भू से दानव दुर्द्धर्ष
गये चिक्षुर के तन से प्राण।
देवि से करने को संग्राम
तुरत आया चामर बलवान॥
भवानी के तन पर तत्काल
किया उसने भी प्रबल-प्रहार।
हुआ पर विफल दनुज-उद्योग
भरी जब दुर्गे ने हुंकार॥
हुई निष्प्रभ चामर की शक्ति
गिरा वह भू पर तज गजराज।
किन्तु तत्काल सँभल कर उठा।
भिड़ा तब तक गज से वनराज॥
केहरी ने कर विकट दहाड़
दिया मतवाला हस्ति पछाड़।
पकड़ कर फिर चामर के केश
दैत्य की डाली भुजा उखाड़॥

हुआ पल दो पल भीषण युद्ध।
सिंह से चामर का तत्काल।
पकड़ पञ्जों में अरि की देह
भरी केहरि ने विकट उछाल॥
पटक कर फिर भू पर तत्काल
किये केहरि ने भीषण वार।
छिन्न कर नाखूनों से कंठ
लिया धड़ पर से शीश उतार॥
अन्य असुरों को भी उस काल
किया जगदम्बा ने बेहाल।
शिला की वृक्षों की कर चोट
कचूमर सबका दिया निकाल॥
थप्पड़ों-मुक्कों की खा मार
गिरे उस काल उदग्र-कराल।
वाष्कल-भिन्दपाल से बिद्ध
गिरा भू पर तत्काल बिडाल॥
तीक्ष्ण वाणों से तत्क्षण बिंधे
ताम्र-अन्धक के दीर्घ शरीर।
गिरे दुर्धर-दुर्मुख रण-मध्य
वक्ष पर खाकर तीखे तीर॥
उग्र-उग्राद्य महाहनु आदि
देवि ने पल में डाले मार।
उठा कर में तीखी करवाल
कुपित होकर कर प्रबल-प्रहार॥
सेन सेनापति सारे काट
धरित्री लोथों से दी पाट।
भद्रकाली की मूर्ति-विशाल
बन रही थी उस काल विराट्॥

देख निज सेना का विध्वंस
हो उठा महिषासुर विकराल।

काँपने लगी क्रोध से देह
हो गये लोचन ज्वलित मशाल॥
धार कर फिर भैंसे का रूप
लगा करने रण-थल में नाश।
युद्धरत जगदम्बा के भक्त
हुये आहत पा भीषण-त्रास॥
किसी पर कर थूथुन से वार
किसी पर खुर से विकट प्रहार।
नुकीले सींगों से संहार
किसी का डाला उदर विदार॥
गणों की सेना को यों मार
महिष दौड़ा देवी की ओर।
देख उस काल असुर का वेग
कँपे अवनी-अम्बर के छोर॥
खुरों से धरती का उर खोद
गिरा सींगों से उच्च-पहाड़॥
वेग से चक्कर देकर महिष
लगा भरने नभ में चिंघाड़॥
काँपने लगा सकल भू-लोक
क्षुब्ध हो उठी जलधि की धार।
कटी अम्बर की घन घन - राशि
किया जब खल ने श्रृंग-प्रहार॥
उड़ाने लगे धरा पर धूल
महिष के तीव्र-श्वास-उच्छ्वास।
भरा शत-झंझाओं का वेग
हुये ज्यों प्रकट पवन उनचास॥
देख दानव-दल का उत्पात
भरी जगदम्बा ने हुंकार।
भुजा में सारी शक्ति समेट
दैत्य पर किया पाश का वार॥
बाँध कर महिषासुर की देह
पाश को लिया देवि ने खींच।

समझ बन्धन में अपने प्राण
बन गया केहरि, तत्क्षण नीच॥
जानकर खल का छल तत्काल
चलीं चण्डी करने शत-खण्ड।
दैत्य तब त्याग शीघ्र पशु - देह
बन गया दानव परम-प्रचण्ड॥
दनुज को पुरुष रूप में देख
देवि ने डाला शर से बेध।
शक्ति से आहत कर खल-शक्ति
शूल से सब तन डाला छेद॥
सहजता से सह चण्डि-प्रहार
बन गया महिषासुर गजराज।
सूँड़ से लगा खींचने दुष्ट
भगवती का वाहन वनराज॥
देवि ने काटी तत्क्षण सूँड़
किया अपने वाहन को मुक्त।
देह पर खा फिर गदा-प्रहार
उगलने लगा महिष-मुख रक्त॥
सँजोकर फिर तन की सब शक्ति
बदलकर फिर अपना पशु-रूप।
त्यागकर शुण्ड - हीन गज देह
महिष ने धरा महिष का रूप॥
लगा करने व्याकुल त्रैलोक
विश्व में भरकर भीषण शोक।
समझता था निज मन में दुष्ट
कौन सकता मेरी गति टोक?
लक्ष्य कर महिषासुर - उर - भाव
लगीं हँसने चण्डी तत्काल।
किया दुर्गा ने जब मधु - पान
हुये तब लोचन लाल - कराल॥
लगीं कहने अम्बा- "रे मूढ़!
गरज ले, कर ले क्षण भर शोर।

अभी करके मैं मृदु - मधु - पांन
गिराऊंगी तुझको इस ठौर॥
शीघ्र ही करके तेरा नाश
सुरों को सौपूँगी मृदु-हास।
जगत् का पतझर करके नष्ट
धरा पर लाऊंगी मधुमास॥''
रिक्त कर शीघ्र मधु का पात्र
महिष से कहकर इतनी बात।
कुपित होकर चण्डी ने किया
उछल कर रिपु-सिर पर आघात॥
पगों से कुचल दैत्य की देह
चण्डिका चलीं काटने मुण्ड।
समझकर निज जीवन का अंत
त्यागने लगा महिष तब रुण्ड॥
त्याग पाया था आधी देह
दिया तब तक देवी ने रोक।
हरण कर सारा शक्ति-प्रभाव
दिया कुन्तल छाती में भोंक॥
उठाकर फिर कर में खर-खड्ग
किया चण्डी ने चण्ड-प्रहार।
चीर कर महिषासुर का वक्ष
शीश गरदन से लिया उतार॥
हरा जगदम्बा ने जग भार
महिष का करके यों संहार।
मिटा तीनों लोकों का ताप
चतुर्दिक् छाया हर्ष अपार॥
गणों ने करके जय-जय कार
किया तारक स्वर से जयनाद।
गया तीनों लोकों में गूँज
देवि की जय का शुभ-संवाद॥
बही सब ओर सुगन्धित बात
गगन से झरे धरा पर फूल।

मिटा देवों के उर का ताप
मिटा तीनों लोकों का शूल॥
नाचने लगे यक्ष-गन्धर्व
बजाकर ढोलक - वेणु - मृदंग।
मुदित हो उठीं अप्सरा आदि
हुये पुलकित देवों के अंग॥
गूँजने लगा मधुर संगीत
लगे करने ऋषिगण जय गान।
सुरों ने करके जय - जय कार
किया जगदम्बा का सम्मान॥

* * *

स्तवन

महिषासुर बध की कथा
ऋषिवर मेधा ने कही।
दूर हुई सुरगण-व्यथा
मुदित समाधि - सुरथ हुये॥
शक्रादिक - सुर - वृन्द
देवि - पगों पर शीश धर।
विनती यों करने लगे
जगदम्बा की जोड़ कर —

"सुरवृन्द की समन्वित, संयुक्त-शक्ति हो तुम
है विश्व व्याप्त सारा, तेरे अतुल-सुबल से।
जगदम्बिके! जगत के, ऋषि-देव-वृन्द सारे
श्रद्धा भरे स्वरों में, करते तुम्हें नमन नित॥

माता! प्रभाव तेरा, है अतुलनीय जग में
भगवान विष्णु-ब्रह्मा, कब शक्ति कह सके हैं?
हैं श्रान्त शेष के स्वर, गुणगान में तुम्हारे
अम्बा! स्वरूप तेरा, शंकर भी कह न पाये॥

हे भगवती! करो तुम, जग-जीव-जन्तु-पालन
माँ! लोक-त्रय सुखी हों, वरदान पा तुम्हारा।
भय हारिणी! हरो भय, जो व्याप्त हैं भुवन में
सब अशुभ नष्ट कर दो, जगदम्बिके! जगत के॥

विष्णु-प्रिया सुकृतिजन, गृहवासिनी तुम्ही माँ!
दारिद्रय रूप तुम ही, हो पापियों के घर में
बन बुद्धि तुम बसी हो, निर्मल पवित्र चित में
श्रद्धास्वरूपिणी माँ! सज्जन निवासिनी तुम॥

सम्पूर्ण विश्व की माँ! रक्षा तुम्हीं से संभव
अतएव माँ! तुम्हारे, पग-कमल में नमन नित।
जननी! चरित्र तेरे, हैं अकथनीय जग में
कैसे कहें पराक्रम, जो युद्ध में लखा है॥

माता! अचिन्त्य हैं सब, सत्-शक्तियाँ तुम्हारी
तेरा स्वरूप जननी! जन कौन जान पाया?
तेरी अपार महिमा, मोहित किये सभी को
जगदम्बिके! तुम्हारी, ही कृपा चाहते सब॥

तुम हेतु हो जगत का, सत-रज तुम्ही तो तम हो
निर्दोष हो सतत तुम, जगदम्बिके! जगत में।
अज्ञात विष्णु-शिव को, माँ! शक्तियाँ तुम्हारी
जगपालिनी! तुम्हें नित, करते सभी नमन हैं॥

संसार अंश तेरा, सब तुझी से बने हैं
अव्याकृता परा तुम, माँ! प्रकृति तुम सनातनि।
शिव-रूपिणी! तुम्हीं से, संसार सब प्रकाशित
ज्योति-स्वरूपिणी माँ! तुमको सदा नमन है॥

स्वाहा-स्वधा तुम्हीं माँ! सुर-पितर-तृप्ति-दायिनि
जगदम्बिके! तुम्हीं हो, जग-मुक्ति हेतु रूपा।
तुम ही महान माया, जगदीश की जगत में
ऋषि-देव-मनुज पूजित, विद्या परा तुम्हीं माँ॥

तुम शब्द रूपिणी हो, जगदम्बिके! त्रयी तुम
हे भगवती! तुम्हीं तो, आधार ऋक्-यजुर का।
उद्गीथ के मनोहर, अति कर्ण-प्रिय पदों में
आबद्ध साम तुम ही, माता! सनातनी हो॥

षड् - ऐश्वर्य - संयुत, उत्पत्ति हेतुभूता
आजीविका तुम्हीं हो, माता! सकल जगत की।
व्यवसाय-कृषि सभी में, प्रतिबिम्ब माँ! तुम्हारा
संसार का निरन्तर, कल्याण कर रहा है॥

अघनाशिनी जगत की, संताप हारिणी तुम
हे भगवती! हरो अब, पीड़ा समस्त जग की।
सत्-ज्ञान-दायिनी माँ! मेधा अपार तुम ही
तुम ही बसी हुई हो, बन ज्ञान शास्त्रों में॥

हो अनासक्त अम्बे! जग-झील में जलज सी
माता! तुम्हीं हो नौका, दुर्लंघ्य जग जलधिकी।
मधु-कैटभारि हरि की, उरवासिनी-प्रिया तुम
शिव-चन्द्र चूड़-हर की, प्रेयसि शिवा तुम्हीं हो॥

माँ! सौम्य-मुख तुम्हारा, त्रय-ताप हर मनोहर
निशिपति मयंक सा है, शीतल-धवल- सुखद-शुभ।
सुस्मिति सुमन्द मुख की, माँ! शान्ति प्रद सदा ही
तन-कान्ति तप्त-कंचन सी, प्रभामयी है माँ॥

आश्चर्य है महिष ने, शिव-सौम्य रूप पर भी
आक्रोश युक्त होकर, आघात क्यों किया यों?
दुर्वृत्त-दुष्ट - पामर, रिपु-भाव रख हृदय में
पशु सा कटा समर की, बलि-वेदिका के ऊपर॥

लख धृष्टता दनुज की, अति-रम्य मुख तुम्हारा
उस काल सांध्य-शशि सा, रक्ताभ हो उठा था।
सुविशाल-भाल पर वे, टेढ़ी कराल भौंहें
थीं लाल-लाल आँखें, मानो अनल- कमल हों॥

रणभूमि में तुम्हारा, वह असह वेग माता!
शत-शत प्रभञ्जनों की, गति को लजा रहा था।
कर में कराल-शम्पा, असि बन चमक रही थी
थीं महामृत्यु रण में, संहार-रूपिणी तुम॥

जग पालिनी! जगत को, देतीं सदा अभय हो
होकर प्रसन्न माता! शुभ-सौम्य रूप धरतुम।
पर रोषयुक्त होकर, बन चण्डिका तुम्हीं माँ
हो सर्वनाश करतीं, अघ रूप दुष्ट - दल का॥

माँ! कर दिया पलों में, संहार दनुचमू का
यह शक्ति का तुम्हारी, संक्षिप्त सा नमूना।
जगदम्बिके! पराजित, जिसने किया शचीपति
दुर्दान्त-दैत्य वह माँ! तुमने मिटाया पल में॥

वरदायिनी! तुम्हारी, महिमा कहें कहाँ तक
है अतुलनीय-विक्रम, माँ! सर्वथा तुम्हारा।
सज्जन-हृदय-निवासिनि! आह्लाद् - कारिणी तुम
हे भगवती! सदा दो, तुम अभयदान हमको॥

तुम दुष्ट-दल हृदय में, हो रुष्ट भीति भरतीं
तुम ही सरल-उरों में, सन्तुष्टि बन बसी हो।
भय-भीति-युत अभयमयि, अतिक्रूर-कृपा-कारिणी
लीलामयी! तुम्हारी, लीला अपार भू पर॥

माता! सुमन सरिस तुम, सौरभमयी सुशोभन
अति-कोमला-सुसरला, अति-वत्सला भगतहित
पर क्रूर-कर्म-खल के, संहार के लिये माँ
ज्वाला-कराल-भीषण, पवि-पात बज्र भी हो।

हे भगवती! भवानी! कर नाश इस महिष का
तुमने किया अभय माँ! त्रैलोक में सभी को।
हम सब शरण तुम्हारी, आये हुये हैं जननी
रक्षण-भरण सभी का, माँ! भार नित तुम्हीं पर॥

माँ! शूल से मिटाओ, पथ-शूल सब हमारे
अब खण्ड-खण्ड कर दो, सारे अनिष्ट असि से।
घण्टा किया जो अर्पित, तुमको सुरेश ने माँ!
उसकी प्रचण्ड-ध्वनि से, रक्षा करो हमारी॥

कोदण्ड-चण्ड कर में, जो हो रहा सुशोभित
टंकार कर उसी को, ध्वनिमय करो जगत सब।
जगदम्बिके! हमारी, भव भीतियाँ भगाओ
सब ओर अब करो माँ! रक्षा समस्त जग की॥

वे अस्त्र-शस्त्र सारे, जो करों में तुम्हारे
निर्भय करें हमें अब, जगदम्बिके जगत में।
जल-थल-गगन कहीं भी, दुश्शक्ति जो जहाँ हो
वह अहित कर न पाये, माँ! भक्त का तुम्हारे॥''

कर विविध-विधि विनय यों, अर्चन किया सुरों ने
नन्दन - सुमन - समर्पित, कर प्रीति से पदों पर।
चन्दन - सुगन्ध - परिमल, अर्पन किये सभी ने
तब भगवती कृपा कर, बोलीं मधुर स्वरों में —

''हे देवगण! कहो जो, अभिलाष हो तुम्हारी
सन्तुष्ट मैं तुम्हारे, पूजन - नमन - वचन से।
जो कष्ट हो कहो वह, मैं दूर सब करुँगी
निर्भय रहो जगत में, मम-भक्ति का सुबल ले॥''

माँ का अभय वचन सुन, शक्रादि ने कहा यों-
''अम्बे! हुये सुखी हम, खल-महिष के निधन से।
है विनय अब हमारी, जब सुस्मरण करें हम
तब-तब कृपामयी! तुम हरना कलेश सारे॥

माँ! दिव्य-मूर्ति तेरी, हमको सदा अभय दे
बर्द्धन करे धरा पर, सौभाग्य सुख सभी का।
जो सुस्तवन तुम्हारा, माता! करें विनय से
धन-धान्य-पुत्र युत हो, हों सर्वथा सुखी वे॥''

राजन! सुरथ! कही यों, महिमा अमित जननि की
वे विश्वमोहिनी-माँ, कल्याण-कारिणी हैं
शिवरुपिणी-जननि की, मनहारिणी-कथा यह
धर ध्यान अब सुनो तुम, अगले चरित्र सारे॥

प्रियवर समाधि! उर में, माँ छवि मयी बसाकर
निर्मल-पवित्र-चित से, चिन्तन करो जननि का।
अघ - हारिणी शिवा अब, संताप - हारिणी हों
कल्याण-कारिणी-माँ, संशय हरें तुम्हारे॥

* * *

दूतकर्म

प्राचीन-काल में एक बार
बल-विक्रम-वैभव में अपार।
बलशाली शुम्भ-निशुम्भ लगे
करने अमरावति पर प्रहार॥
पद-भ्रष्ट पुरन्दर को करके
कर लिया हरण त्रैलोक-राज।
हर लिये यज्ञ के सभी भाग
देवों के सुख में लगा आग॥
उपयोग लगे करने दोनों
देवों के सब अधिकार स्वयं।
यम-सूर्य -सोम - जलपति - कुबेर
बलहीन बना, बलवान स्वयं॥
मारुत के और हुताशन के
अधिकार खलों ने छीन लिये।
सुरपुर से सुर निष्कासित कर
सर्वथा दीन-बलहीन किये॥
तब खिन्न-तिरस्कृत सुर-समूह
देवी को याद लगा करने।
उन विश्वव्यापिनी के समक्ष
यों आर्त्तनाद लगा करने—

''जग जननी! तुम को नमस्कार
जय रूपिणि! तुमको नमस्कार।
कैलाश-अधिप शिवशंकर की
प्रिय शिवा! तुम्हें शत नमस्कार॥
हे प्रकृति रूपिणी! नमस्कार
जगदम्बा! भद्रा! नमस्कार।
रौद्रा! नित्या! गौरी! धात्री!
चन्द्रिकामयी! शत नमस्कार॥

हे चन्द्ररूपिणी! नमस्कार
जय सुख स्वरूपिणी! नमस्कार।
शरणागत प्रति कल्याणमयी!
हे ऋद्धि रूपिणी! नमस्कार॥
जय सिद्धि-स्वरूपा! नमस्कार
शिव-महरानी! शत नमस्कार।
दुर्गा! देवी! शत नमस्कार
माँ! संकट-हारिणि! नमस्कार॥
सर्वस्व - सार - रूपिणि! अम्बे!
कृष्णे! धूम्रे! शत नमस्कार।
नैऋती! तुम्हें शत नमस्कार
जय राज्य-लक्ष्मी! नमस्कार॥
जय ख्याति-रूपिणी! नमस्कार
जय सर्व-कारिणी! नमस्कार।
अति सौम्य! रौद्र! ब्रह्माण्ड हेतु
कृति-देवी! तुमको नमस्कार॥
जो अम्बा हरि-माया बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा चेतना रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा बन बुद्धि-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय - विकास॥
जो जगदम्बा निद्रा बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास।

जो जगदम्बा धर क्षुधा-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा छाया बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर शक्ति रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा तृष्णा बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर क्षान्ति-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
अनेक शत - शत - शत नमस्कार।
वे करें नित्य सुखमय विकास॥
जो जगदम्बा लज्जा बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर जाति रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा शान्ति बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर कान्ति रूप
करती हैं जन-जन में निवास।

उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा श्रद्धा बनकर
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा बन वृत्ति-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा लक्ष्मी रूप धर
करतीं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा सुस्मरण शक्ति
बन करतीं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर दया-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा बन तुष्टि रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा धर मातृ-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।
उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो जगदम्बा बन भ्रान्ति-रूप
करती हैं जन-जन में निवास।

उनको शत-शत-शत नमस्कार
वे करें नित्य सुखमय-विकास॥
जो व्याप रहीं जड़-चेतन में
स्वामिनि बन सकल इन्द्रियों की।
उन जगदम्बा को नमस्कार
वे पूर्ण करें आशा मन की॥
चैतन्य कर रहीं जो सबको
बनकर जग में चेतना रूप।
वे कल्याणी कल्याण करें
माँ- सुयशमयी सुखमय-स्वरूप॥
जिनका निशिदिन सुस्तवन किया
देवों ने श्रद्धायुत होकर।
जिनकी सुरेश ने सेवा की
वर्षों तक दत्त-चित्त रहकर॥
वे जग जननी कल्याणमयी
मंगलकारिणि होकर प्रसन्न।
अब पुनः हमारे कष्ट हरें
करके सारे अरिगण विपन्न॥''

यों बार-बार जब की विनती सुरों ने
होकर प्रसन्न गौरी कहने लगीं तब—
''किसकी विनय कर रहे यों आज सुरगण
किसको रिझा रहे यों जय-गान गाकर?''
तत्काल गौरि-तन से प्रकटीं शिवा ने
उनसे कहा- ''कर रहे विनती हमारी।
हूँ कौशिकी, तुम्हारे तन से प्रकट मैं
संहारिणी खलों की सुर-शोक-हारिणि॥''

गौरांश गौरि-तन से हुआ पृथक् जब
श्यामा कराल काली तब बन गयीं वे।
बसने लगीं हिमालय पर कालिका बन
अघहारिणी जगत की काली-कराली॥

गौरांश-धारिणि जननि वे कौशिकी तब
करने लगीं प्रकाशित अग-जग प्रभा से।
शुभ्रांग चन्द्र वदना अति सौम्या माँ
रुचिरा-मनोहरा - कान्तिमती- मनोज्ञा॥

उस काल खल-चरों ने आकर वहाँ पर
देखी अपार-आभा जगदम्बिका की।
क्षण भर चकित-भ्रमित से लखते रहे फिर
जाकर कहा चरों ने निज स्वामि से यों—

"दैत्येश! आज अद्भुत-कौतुक लखा जो
वह चण्ड-मुण्ड हम हैं करते निवेदन-
नारी-मनोज्ञ-वदना गिरिराज पर बस
अपने सुरूप से है अग-जग लुभाती॥

उसकी अलौकिक-छटा कनकाभ-आभा
भरती प्रकाश अद्भुत अब दस-दिशों में।
उसके समक्ष शशि की सुषमा पराजित
उससे तिरस्कृत सतत शोभा जगत की॥

वह द्युतिमती-भगवती नगराज पर ही
करती निवास, दैत्येश्वर कर ग्रहण लें।
प्रभु! नारि-रूप उस मणि का भी वरण कर
सुख से बसें जगत में त्रैलोक्य-पति बन॥

ब्रह्माण्ड में जहाँ जो उत्तम रतन हैं
वे सब प्रभो! तुम्हारी शोभा बढ़ाते।
यह पारिजात-ऐरावत दिव्यतम-गज
उच्चैश्रवा तुरग सब करगत तुम्हारे॥

यह रत्नभूत अद्भुत वरयान जिसको
मानस-मराल कोमल पर पर चलाते।
जिस पर विराजित कभी ब्रह्मा स्वयं थे
वह आज तब अजिर की शोभा बढ़ाता।

यह महापद्म नामक निधि जो कभी थी
अलकेश यक्षपति के कर में विलसती।
उसको कुबेर से भी छीना प्रभो! ने
अधिपति बने स्वयं हैं निज बाहु-बल से॥

जिसके कमल न निष्प्रभ होते कभी भी
केसर-सुगन्ध संयुत किंजल्किनी यह।
भयभीत-त्रस्त रत्नाकर भी स्वयं ही
है दे गया मनोहर माला कमल की॥

दैत्येश! श्रेष्ठ स्यन्दन प्रजेश का यह
है हो रहा सुशोभित अपने भुवन में।
जो झारता कनक, ज्यों जल-बिन्दु घन से
वह वरुण-छत्र भी है अब आप पर ही॥

यह काल की कराली-उत्क्रान्तिदा भी
ली छीन मृत्यु की शक्ति दनुजेश! तुमने।
यह पाश सुर वरुण का, मणियाँ जलधि की
सारी हुईं करगता प्रभु के अनुज की॥

ज्वाला-कराल जिनकी जग को कँपाती
वे अग्नि देव भी अब वश में तुम्हारे।
अतिशय विनीत बन कर, कर जोड़ कर हैं
दे गये तुम्हें दिव्य- वसन मनोहर॥

हे दैत्यराज! जग में जो भी जहाँ पर
ग्रहणीय है, किया वह सब प्राप्त तुमने।
फिर क्यों नहीं ग्रहण कर नारी मनोहर
होते सुखी स्वयं प्रभु हमको सुखी कर॥''

सुन चण्ड-मुण्ड का यह रूचिकर निवेदन
होकर प्रसन्न-चित में यों शुम्भ बोला-
''सुग्रीव! दूत बनकर तुम शीघ्र जाओ
लाओ यहाँ बुला वह नारी - मनोज्ञा॥

कहना मधुर-वचन यों उस कान्ता से
जिनसे प्रसन्न होकर वह शीघ्र आये।
मेरे अपार बल-विक्रम की कहानी
कह बार-बार उसके चित को लुभाना॥''

पाकर निदेश निज स्वामी शुम्भ से यों
सुग्रीव दूत बनकर पहुँचा वहाँ पर।
नगराज पर जहाँ थीं अम्बा अधिष्ठित
करती हुई प्रभासित जग निज-प्रभा से॥

कहने लगा विनय भरकर फिर स्वरों में
सुग्रीव देवि-सन्मुख स्वामी-सन्देशा—
''हे देवि! स्वामि हैं जो त्रैलोक के अब
बलवान-शुम्भ उनका चर मैं समागत॥

जिनका अपार-विक्रम कर सुर पराजित
है छा रहा जगत में कलकीर्ति बनकर।
दैत्येश शुम्भ वे अब तुम पर कृपा कर
हैं चाहते ग्रहण पाणि-कमल तुम्हारा॥

संदेश प्रीति-युत जो भेजा उन्होंने
उसको करो श्रवण सुन्दरि! ध्यान देकर।
मैं शुम्भ जग जयी हूं त्रैलोक-अधिपति
मेरा अपार-वैभव अतुलित- पराक्रम॥

मैं कर चुका पराजित देवेश को भी
यम-वरुण-अग्नि - मारुत सबको हराकर।
हैं हो चुके सभी वशवर्ती अमरगण
मेरे समान योद्धा जग में नहीं है॥

अनुचर बने हुये हैं सारे अमरगण
आदेश पालते हैं मेरे सभी वे।
निर्बाध भोगता मैं यज्ञांश सबके
अब शेष है नहीं रञ्च अवरोध कोई॥

त्रैलोक की सकल दिव्य-निधियाँ विजित कर
मैं हूँ बना अधीश्वर सारी प्रकृति का।
सुर-नाग-यक्ष-नर- किन्नर-गण सभी ने
अपनी समस्त निधियाँ दीं सौंप मुझको॥

हे सुन्दरी! तुम्हारा तन यह सुशोभन
है दिव्यतम रतन भूतल पर मनोरम।
शुभ-लक्षणे! अतः कर तुमको ग्रहण अब
हूँ चाहता करुँ मैं श्री-वृद्धि अपनी॥

आकर करो कृतार्थ हमको स्वयं तुम
तुम दिव्य-रत्न-रूपा, हम रत्न-भोगी।
मुझ शुम्भ को वरो या मेरे अनुज को
वर कर बनो स्वामिनी सारे जगत की॥"

सुन दूत के वचन यों कुछ मुस्कराकर
कहने लगीं भगवती - "सच ही कहा है।
हैं शुम्भ स्वामि त्रिभुवन के इस समय में
अतुलित-पराक्रमी दैत्य निशुम्भ भी हैं॥

पर पूर्व काल में जो की है प्रतिज्ञा
उसको कभी न मिथ्या मैं कर सकूँगी।
जग में वही वरेगा मुझको समर में
कर पराभूत, खण्डित मद जो करेगा॥

मेरे समान बलवान पुरुष जगत में
जो हो करे समर मुझसे आ यहाँ पर।
जीते मुझे, हरे मेरा गर्व सारा
कर ले ग्रहण फिर मुझे जेता मुदित हो॥

हे दूत! शीघ्र जाकर निज स्वामियों को
जो प्रण किया है मैने, पहले बताना।
फिर भेजना उन्हें प्रेरित कर समर को
आकर मुझे हराकर वर लें रतन वे॥"

सुनकर कथन यह जगदम्बिका का
कहने लगा दूत किञ्चित कुपित हो-
अभिमानिनीं! तुम बिना विचारे
देतीं निमन्त्रण निज मृत्यु को अब॥

इन्द्रादि सारे सुरगण विचारे
ठहरे न जिसके सम्मुख समर में।
अयि! कोमलांगी! प्रति - पक्षिणी बन
एकाकिनी तुम कब तक टिकोगी?

अत: उचित है चल साथ मेरे
कमलाक्षि! अपना गौरव बचाओ।
बनकर असुर - कुल की गेह-लक्ष्मी
दैत्येश-गृह की शोभा बढ़ाओ॥

नहीं चलोगी यदि साथ मेरे
तो नष्ट करके गौरव तुम्हारा।
रण में हराकर कर केश-कर्षण
बल से बनायेंगे दैत्य दासी॥

कहा देवि ने दूत से, करके लोचन-लाल—
"जो कुछ मैंने है कहा, वही करो तत्काल॥
जाकर शुम्भ-निशुम्भ को, दो मेरा संदेश।
इच्छा यदि मम ग्रहण की, वरण करें रण - देश॥
आकर संगर में मुझे, तृप्त करे दनुजेश।
मैं भी अब धारण करूँ, रणचण्डी का वेश॥"

* * *

धूम्रलोचन-बध

देवि का उत्तर सुनकर दूत
कुपित हो चला शुम्भ की ओर।
जानकर चण्डी का अभिप्राय
असुर साधने लगे रण-डोर॥
क्रोध से हुआ शुम्भ विकराल
हो गये दोनों लोचन लाल।
कॉपने लगे रोष से अंग
गरजने लगा दनुज तत्काल-
"धूम्रलोचन! तुम जाकर शीघ्र
करो उस नारी का मद-चूर्ण।
युद्ध में कर उसको सन्तुष्ट
करो मेरी इच्छायें पूर्ण॥
चमूपति! शीघ्र सजाकर सेन
रचो जाकर भीषण रण-रंग।
पलों में कर नारी बल क्षीण
करो क्षण में सारा मद भंग॥
खींच कर उस दुष्टा के केश
पकड़ कर ले आओ अविलम्ब।
घसीटो धरती पर कर पकड़
करो मत पल भर रञ्च विलम्ब॥
देवता-यक्ष याकि गन्धर्व
उपस्थित करें अगर अवरोध।
मचा रण में भीषण-विध्वंस
विफल कर देना सकल विरोध॥"

दैत्य-सेना को लेकर साथ
कँपा अवनी-अम्बर के छोर।

चमूपति धूम्राक्ष कर क्रोध
गरज कर चला समर की ओर॥
मही डोली, सुनकर ललकार
कँपा अम्बर, सुन समर पुकार।
लगे करने घन-गर्जन - घोर
दैत्य रण-थल में साठ-हजार॥
अम्बिका के समक्ष खल-वृन्द
लगे करने भीषण-उत्पात।
समझकर आद्यशक्ति असहाय
लगाने लगे देवि पर घात॥

शक्ति के मादक मद में चूर
लगा कहने धूम्राक्ष क्रूर—
"अरी ओ मूढ़ा! क्षण भर ठहर
दण्ड दूँगा तुझको भरपूर॥
असुर-अधिपति की आज्ञा टाल
किया तूने भारी अपराध।
दण्ड दूँगा मैं तुझको आज
अन्यथा पूरी कर दे साध॥
चली चल अभी शुम्भ के पास
ग्रहण कर दैत्येश का हाथ।
खोल अपने सौभाग्य-कपाट
सनाथा हो जा अरी अनाथ!
अगर अपनी इच्छा से नहीं
चलेगी अब भी मेरे साथ।
घसीटूँगा तब गहकर केश
पकड़कर बल से तेरा हाथ॥"

कहा देवी ने सुन कटु वचन
शान्त-मृदु-स्वर में यों तत्काल-

"अगर अपहरण करेंगे आप
शक्ति से मेरा यों इस काल॥
विक्रमी - बली - असुर तुम वीर
करुँगी मैं कैसे प्रतिकार।
विवश होकर जाऊंगी साथ
करोगे यदि तुम प्रबल-प्रहार॥
रोक कैसे पाऊंगी तुम्हें
सबल सब-विधि तुम, मैं असहाय।
अकेली हूँ मैं रण के मध्य
तुम्हें है सेना का साहाय्य॥
बढ़ो आगे संचित कर शक्ति
दिखाओ निज बल-वीर्य-अपार।
पकड़ लो मेरा कर, धर केश
ले चलो कर अति तीव्र-प्रहार॥"

बढ़ा आगे सुन देवी वचन
दनुज करने को उन पर वार।
कुपित होकर खल पर तत्काल
भरी जगदम्बा ने हुंकार॥
चमूपति धूम्राक्ष सुन शब्द
हो गया क्षण में जलकर क्षार।
असुर दल उमड़ पड़ा तत्काल
अम्बिका पर करने को वार॥
लगे बरसाने सायक-शूल
देवि पर करके भीषण रोष।
अम्बिका ने भी किये प्रहार
हृदय में धारण कर आक्रोश॥
केहरी ने कर गर्जन घोर
भरी असुरों के उर में भीति।
चीर कर असुर सैन्य की पाँति
करायी यम से उनकी प्रीति॥

किसी का उर पंजों से फाड़
किसी का तन दाँतों से काट।
किसी को जबड़ों में धरचीर
धरित्री दी लाशों से पाट॥
दैत्यों का मद करके चूर
काट कर कर-पद-पेट-कपाल।
सिंह ने कुछ ही पल में किया
रणस्थल अरि-शोणित से लाल॥
देख देवी का भीषण-रूप
देख चण्डी-वाहन का रोष।
लगे कँपने असुरों के झुण्ड
पड़ा ठंडा संगर का जोश॥
छोड़ने लगे समर की भूमि
दैत्यों के दलपति तत्काल।
चरों से सुन संगर का हाल
हो गया शुम्भ क्रोध से लाल॥

बुलाकर चण्ड-मुण्ड से कहा-
"करो तुम शीघ्र शर-संधान।
सजाकर असुर-सैन्य- सुविशाल
रचो रण में अति भयद वितान॥
दिया जिसने धूम्राक्ष मार
चुका डालो उस से प्रतिशोध।
करो मत पल भर और विलम्ब
शीघ्र जाओ भर उर में क्रोध॥
बने जैसे भी करके कैद
साथ ले आना सुन्दरि नारि।
अन्यथा रण में देना मार
शक्ति वह जो भी हो दनुजारि॥
केहरी के करके शत-खण्ड
प्राण हर लेना पशु के आज।

खींच चण्डी के कोमल-केश
सफल करना संगर के काज॥"

प्रेरित होकर शुम्भ से
चण्ड - मुण्ड दोनों चले।
ज्यों प्रभात के दीप
बुझने से पहले जलें॥
कर रणनीति विचार
चले हिमालय ओर।
करने को संहार
शक्तिमती जग-जननि का॥
रच रण-रंग-विधान
बढ़े मृत्यु की ओर।
तीखे शर-संधान
ज्यों दीपक - शिखि - प्रति शलभ॥

* * *

चण्ड-मुण्ड-बध

आदेश स्वामि से यों पाकर समर का
रण-रंग-मत्त चतुरंगिणि-सैन्य लेकर।
वे चण्ड-मुण्ड दोनों प्रस्थित हुये ज्यों
झंझा उमड़ पड़ी हो भू-नभ कँपाकर॥

भू-मानदण्ड नगअधिपति के शिखर पर
दर्शन किये असुर-दल ने अम्बिका के।
देखी अपार-आभामयि शक्ति-रूपिणि
नारी-अतुल - बलमयी गिरि पर विराजित॥

बैठी हुई सुखासन में सिंह पर जो
अद्भुत-सिंगार जिसका है जग लुभाता।
अति सौम्य-कान्तिमय-तन कोमल-कमल सा
है राजती अधर पर सुस्मिति-मनोहर॥

सीधी-सरल - छविमयी-आकृति निरखकर
करने लगे दनुज-दल उद्यम ग्रहण का।
घिरने लगे असुरगण पावस घटा से
छिपने लगीं अम्बिका घन मध्य शशि सी॥

कर में प्रखर कटारी तानी किसी ने
करने लगा धनुष पर टंकार कोई।
कोदण्ड-चण्ड पर शर रखकर किसी ने
चाहा करूँ हताहत मृगराज को मैं॥

ले नागपाश कोई कर में बढ़ा यों
ज्यों शीघ्र बाँध लेगा जगदम्बिका को।
उत्पात देख खल-दल के यों कुटिल तम
तत्क्षण लगा बदलने रँग भगवती का॥

करने लगा मृगाधिप गर्जन जलद-सा
भरने लगा चतुर्दिक् भय वह भुवन में।
होने लगीं कुटिल - भृकुटी भगवती की
करने लगीं भयंकर हुंकार अम्बा॥

उर में उमड़ पड़े जब आक्रोश के घन
जलने लगे नयन-द्वय, काँपा अधर पट।
अति रोष से वही मुख श्यामल हुआ जो
श्वेताभ-रक्त-पंकज सा था मनोहर॥

बंकिम-भृकुटि से जगदम्बिका की
प्रकटीं वहाँ तब काली-कराली।
विकराल-वदना करवाल-धारिणि
भरने लगीं वे भय दैत्य-दल में॥

कर में लिये थीं अति-पाश-भीषण
विचित्र-खट्वाँग धारिणि कराली।
बाघम्वरी के उर पर पड़ी थी
नरमुण्ड-माला अतिशय भयानक॥

सूखी हुई थी मज्जा वदन की
अवशेष था पञ्जर-अस्थियों का।
विकराल मुख था फैला हुआ यों
मानो ग्रसेगा त्रैलोक पल में॥

रक्ताभ-जिव्हा बाहर निकलकर
यों हिल रही थी मानो पियेगी।
शोणित असुरदल का एक क्षण में
कराल आँखें अन्दर धंसी थीं॥

काली-कुहू सी अतिशय-कराली
कपाल-धारिणि माँ रुद्र-रूपिणि।
आक्रोश से उग्र हुंकार भरकर
चलीं मिटाने खल-दल जगत से॥

गुञ्जित दिशायें कर गर्जना से
करने लगीं बध वे दैत्य-दल का।
कटने लगे खल तीखे-खड़ग से
पिसने लगे कुछ दब पैर नीचे॥

लगीं चबाने काली दनुज-दल
विकराल दाढ़ों में फिर दबाकर।
भक्षण लगीं करने दैत्यदल यों
सुख से चबाये ज्यों पान कोई॥

पद-भ्रष्ट पथ-भ्रष्ट कर पार्श्व-रक्षक
लगीं मिटाने रण व्यूह अरि का।
गज-वाजि - रथ - सारथि सैनिकों को
चलीं मिटाती, भू-नभ कँपाती॥

वे मुण्ड मालिनि उस काल भीषण
विध्वंस करतीं सी नाचती थीं।
रणभूमि थी क्रीड़ाभूमि उनकी
जिनके करों में थी असि-भयंकर॥

पकड़ किसी अरि के क्रेश लम्बे
उखाड़ देतीं ग्रीवा वदन से।
कभी किसी का गला दबाकर
क्षण में हरण करतीं प्राण-तन से॥

कुचल किसी को पैरों तले वे
आघात करतीं फिरतीं भयानक
किसी असुर का उर फाड़ पल में
पीतीं लहू सुख से ज्यों सुधा हो॥

धर कर भयंकर-असि कंठ पर माँ
श्री-फल सदृश सिर धड़ से उड़ातीं।
कभी किसी को तृण-तुल्य पल में
वे चीर देती थीं अति कुपित हो॥

कटे हुये सर उछाल कर वे
कन्दुक सदृश थीं कर में पकड़तीं।
कभी चरण की ठोकर लगाकर
उछाल देतीं रणभूमि में वे॥

उच्छ्वास में भर असह्य गति तब
कँपा रहीं थीं वे शत्रुदल यों।
झंझा उमड़कर बनकर बबंडर
झकझोर देती ज्यों तरुवरों को॥

घनघोर-घन के काले-हृदय को
सौदामिनी जैसे चीर देती।
वैसे कड़ककर काली-कराली
मिटा रहीं थीं खल-दल निरन्तर॥

ज्यों फैलती है दावाग्नि वन में
बड़े-बड़े तरु कर क्षार देती।
त्यों ही महाकाली उस समर में
गिरा रहीं थीं दुर्दान्त-दानव॥

निदाघ में जैसे जल धरा का
पल-पल सुखाती रवि-रश्मियाँ हैं।
त्यों ही असुर-दल का बल निरन्तर
मिटा रहीं थीं काली-कपाली॥

अति रौद्र-रूपा श्यामा-स्वरूपा
भयंकरा-भीतिहरा - कपालिनि।
नरमुण्ड-मालिनि भरने लगीं भय
उस काल दानव - दल के हृदय में॥

प्रचण्ड-विक्रम जिनका निरखकर
सुर भागते थे भयभीत होकर।
वे ही असुर आयुध त्याग अपने भगने लगे
तब रणस्थली से॥

निश्चित पराजय तब जान अपनी
रण को चला चण्ड करवाल लेकर।
दौड़ा असुर वह उन कालिका पर
जो मृत्यु-रूपिणि थीं अति भयंकर॥

महा भयानक खल मुण्ड ने भी
छोड़े असंख्यक शर कालिका पर।
विफल हुये सब प्रहार ऐसे
जैसे तुहिनकण ज्वलित अनल में॥

अनेक चक्रों से फिर खलों ने
छिपा दिया तन तब कालिका का।
विकराल-वदना कराल-नयना
काली प्रकट थीं फिर भी स्वबल से॥

चबा गयीं निज कराल-मुख में
अनेक चक्रों की श्रृंखलायें
भासित हुआ यों मानों असंख्यक
प्रविष्ट होते हैं रवि घनों में॥

विफल किये चक्र-प्रहार अरि के
तब अति मुदित हो कर भीम गर्जन।
लगीं कँपाने जग कालिका वे
रोषाकुला होकर शत्रुओं पर॥

काले समुन्नत गिरि से वदन पर
अद्भुत छटा थी दाड़िम-दसन की।
जब-जब हँसी आती कालिका को
तब-तब चमकती बिजली घनों में॥

कर क्रोध काली ने खड्ग लेकर
उच्चार 'हुं' का करके भयंकर।
पद क्रान्त पल में कर चण्ड का तन
पकड़ी सुलम्बित घन-केश - राशी॥

किया भयंकर प्रहार तन पर
क्षण में कटा मस्तक चण्ड का तब।
दौड़ा असुर मुण्ड प्रतिशोध लेने
क्रोधित हुई तब काली दनुज से॥

प्रहार भीषण कर मुण्ड पर भी
हरण किये प्राण तत्काल खल के।
रण में हुये हत महादनुज-द्वय
भगने लगी तब सेना खलों की॥

कटे हुये सर कर में पकड़कर
काली चलीं चण्डी ओर तत्क्षण।
कहने लगीं फिर जगदम्बिका से
परम मुदित हो हँसकर ठठाकर-

"हे देवि! मैने पशु दो समर में
निष्प्राण करके अर्पित किये अब।
स्वयं सँभालो करवाल कर में
बध फिर करो शुम्भ-निशुम्भ का भी॥"

चण्डी हँसीं सुन काली वचन यह
कहने लगीं- "मैं सन्तुष्ट तुमसे।
चण्ड-मुण्ड के सर काट लायीं
अत: बनो चामुण्डा जगत में॥"

कहा ऋषि ने कर उन्नत भाल
देवि की महिमा अपरम्पार।
झुका कल्याणमयी को शीश
करो जगदम्बा की जयकार॥

हुआ ज्यों चण्ड-मुण्ड संहार
कहा वह सब तुमसे इस काल।
सुनो अब आगे सुरथ-समाधि
भयंकर रक्त - बीज का हाल॥

* * *

रक्तबीज-वध

कटी जब रण में भारी सेन
गये जब चण्ड-मुण्ड के प्राण।
सुनी जब काली की जयकथा
न देखा जब होता परित्राण॥
क्षुब्ध हो कर तब दानवराज
लगा करने अग-जग पर क्रोध।
कुपित होकर ले सारी सैन्य
चला वह लेने को प्रतिशोध॥
भयंकर मुख-मुद्रायें धार
रोष से व्याकुल वह दनुजेश।
बुलाकर प्रमुख -प्रमुख दल स्वामि
लगा देने रण के आदेश
"उदायुध संज्ञक रणनयविज्ञ
छियासी करें शीघ्र प्रस्थान।
कम्बु नामक चौरासी-दैत्य
चमूपति करके शर-संधान॥
वीर्य कुल के दुर्दान्त-दैत्य
साथ लें सैनिक पाँच-करोड़।
करें रण-प्रांगण प्रति प्रस्थान
हिमालय की दिशि में मुख मोड़॥
अन्य असुरों में कालक-मौर्य
दौर्हद - कालकेय - इन्द्रारि।
चलें सब सज रण के सिंगार
समर में होने को कृतकार्य॥"
सुना सेना को यों आदेश
साथ लेकर खल असुर-अपार।
चण्ड शासक असुराधिप शुम्भ
चला करने भीषण-संहार॥

सहस्रों-सेनाओं के साथ
उड़ाता हुआ धरा पर धूल।
बढ़ा यों जगदम्बा की ओर
उड़े ज्यों ज्वाला-दिशि में तूल॥

भयंकर आक्रमण कर लक्ष्य
करी जननी ने ज्या-टंकार।
धरा से अम्बर तक का भाग
भरा पल भर में सुन गुञ्जार॥
चण्डिका-वाहन ने तत्काल
भयंकर गर्जन कर आरम्भ।
दिया असुरों को न्योता भेज
करो तुम शीघ्र युद्ध प्रारम्भ॥
सिंह के गर्जन का वह शब्द
लगा भरने नभ में गुञ्जार।
अम्बिका ने कर घण्टा नाद
किया बर्द्धन उसका शत-बार॥
सिंह की भीषण गरज दहाड़
कठिन - कोदण्ड - चण्ड - टंकार।
चण्ड-घण्टे का घन - घन नाद
कँपाने लगा सकल-संसार॥
भयंकर-शब्द श्रवण कर कालि
हो गयीं और अधिक विकराल।
फाड़कर मुख अपना कुछ और
दाँत बाहर को लिये निकाल॥
तुमुल-ध्वनि सुन असुरों की सेन
क्रोध से करके आँखे-लाल।
घेरने लगी घनों सी घुमड़
चण्डि - काली - केहरि तत्काल॥
समझकर उस क्षण आपत्काल
खलों का करने को संहार।

लोक-उन्नति का ले संकल्प
सुरों को देने को अधिकार॥
सभी देवों की सारी शक्ति
त्याग कर उनके दिव्य-शरीर।
धार वैसा ही नारी-रूप
चली हरने को संसृति-पीर॥
प्रजापति - ब्रह्मा - शंकर - इन्द्र
षडानन-नारायण की शक्ति।
बनाकर उनका ही प्रतिरूप
चली करने चण्डी की भक्ति॥
हँस से युक्त यान-आसीन
ब्रह्म की शक्ति कमण्डलु धार।
ग्रहण कर अक्षमाल तत्काल
बढ़ी करने खल-दल-संहार॥
महेश्वर शिवशंकर की शक्ति
वृषभ पर हो तत्क्षण आरुढ़।
चली करने असुरों से युद्ध
उठा कर में कराल तम शूल॥
भाल पर बाल-चन्द्र की रेख
हृदय पर महानाग का हार।
भुजाओं में फणिधर केयूर
शीश पर धर सुरसरि की धार॥
समर की वेला में उस काल
दानवी-सेना पर हो क्रुद्ध।
उगलतीं भाल-चक्षु से ज्वाल
चलीं माहेश्वरि करने युद्ध॥
सैन्यपति-कार्तिकेय की शक्ति
तुरत होकर मयूर-आसीन।
हाथ में लेकर भारी-शक्ति
आ गयी करने युद्ध-नवीन॥
वैष्णवी होकर गरुड़ारूढ़
धार कर शंख-चक्र-असि-चाप।

पहिन कर पीत-वर्ण-परिधान
चली हरने जग का संताप॥

वाराह-रूप-धारी हरि की
वाराह-रूपिणी शक्ति अमर।
त्रैलोक-कँपाकर निज बल से
चल दी करने को महासमर॥
हिरणाकश्यपु की काल रूप
जो प्रकट हुई थीं खम्भ फाड़।
वे नारसिंहिनी अभय बढीं
रणकानन में भरकर दहाड़॥
इन्द्राणी ऐरावत पर चढ़
लेकर कर में आयुध-प्रचण्ड।
वे सहस्राक्षि रोषाकुल हो
आयीं करने खल-शक्ति-खण्ड॥
इस भाँति सुरों की सकल शक्ति
आकर रण में एकत्र हुई।
करने को असुरों का विनाश
वे सब व्याप्त सर्वत्र हुईं॥
तब देवशक्ति परिवृत दुर्गा
आवाहन कर शिवशंकर का।
कह उठीं अचानक- "हे भगवन!
है नियम यही हर संगर का॥
दे पहले चेतावनि अरि को
दे रण से हटने का अवसर।
फिर भी यदि मूढ़ अड़े रण में
तो खण्डित करे शीश सत्वर॥
अतएव युद्ध का नियम पाल
मैं करती नम्र निवेदन प्रभु!
बन दूत आप प्रस्थान करें
मेरा संदेश वहन कर विभु॥

अभिमानी शुम्भ-निशुम्भ सभी से
कहिये यह सन्देश आज।
यदि चाहें मूढ़ प्राण-रक्षा
तो त्यागें रण के सकल-साज॥
पाताल-लोक में जाकर वे
सुख से अब सकुशल वास करें।
इन्द्रादिक के अधिकार सौंप
सुर-गण का सारा त्रास हरें॥
फिर से देवों का यज्ञ-भाग
पहले की तरह लगे मिलने।
सुख की सुगन्ध बिखराने को
शान्ति की कली लगे खिलने॥
मेरा आदेश मानकर यदि
अब भी वे रण से हट जायें।
तो सारे दानव-वृन्द आज
फिर से नवजीवन पा जायें॥
आदेश अस्वीकृत कर यदि वे
क़रना चाहेंगे महासमर।
तो देकर उनको मृत्यु - दण्ड
कर दूँगी शीघ्र अभय अमर॥
बल के घमंड में आकर यदि
असुरों का दल अब जूझेगा।
तो भीषण रण के मध्य उन्हें
भगने का पंथ न सूझेगा॥
उनकी रण-विषयक अभिलाषा
मैं पूर्ण करुंगी शीघ्र सभी।
उनके तन खाकर शोणित पी
योगिनियाँ होंगी तृप्त अभी॥"

यों कहकर शिव को भेज दिया
असुरों में उन जगदम्बा ने।

शिव को भेजा था दूत बना
 शिवदूती कहलायीं जग में॥
जगदम्बा का संदेश लिये
 शिव जा पहुँचे दानव-दल में।
पर असुर राज ने ठुकराया
 आदेश शक्ति का बल-मद में॥
शिव के मुख से भगवति-निदेश
 सुन दानवेश था अधिक क्रुद्ध।
पल भर में उसके इंगित पर
 आरम्भ हो गया विकट-युद्ध॥
सबसे पहले ले अस्त्र-शस्त्र
 दानव-दल दौड़ा उसी ओर।
जिस ओर खड़ीं थीं कात्यायीन
 करने को खल-दल मृत्यु कौर॥
उस काल भगवती पर वे सब
 कर उठे भयंकर शस्त्र-वृष्टि।
अति तीक्ष्ण-वाण भाले-कराल
 हल- परशु-शूल - असि-शक्ति ऋष्टि॥
तब खेल-खेल में माँ ने भी
 करके ज्या की टंकार प्रबल।
पल में काटे सब अस्त्र-शस्त्र
 दनु-दल के सकल प्रहार-विफल॥
फिर छिड़ा हिमालय के ऊपर
 सत्ता-परिवर्तक महासमर।
सुर-असुर शक्तियाँ जूझ पड़ीं
 करने को भीषण-रण सत्वर॥

लेकर कर में विकराल-शूल
 काली अरि-उदर विदार चलीं।
खट्वाँग से रिपु-देह पीट
 भू-तल लोथों से पाट चलीं॥

हँसासनि-ब्रह्माणी रण में
थीं विचरण करतीं इधर-उधर।
हरतीं-फिरतीं अरि-ओज-तेज
वे छिड़क-छिड़क जल खल-दल पर॥
माहेश्वरि लेकर खर-त्रिशूल
दानव दल का उर-बेध बढ़ीं।
धर पैर दानवों के सिर पर
कर अट्टहास हो गयीं खड़ी॥
वैष्णवी चक्र से काट-काट
दनुजों के ढेर लगीं करने।
भरकर झंझा का प्रबल-वेग
भूतल में भीति लगीं भरने॥
कार्तिकेयी की चण्ड-शक्ति
से आहत हो दानव अनेक।
सो गये सदा को रण-थल में
नश्वर जीवन की डोर फेंक॥
इन्द्राणी कर में बज्र लिये
करती फिरतीं थीं महानाश।
दानवी-सैन्य की पंक्ति तोड़
करती थीं भीषण-अट्टहास॥
वाराही ने कितने ही खल
थूथन से मार पछाड़ दिये।
कितने दाढ़ों से चबा-लिये
कितनों के सीने फाड़ दिये॥
बलबती-नारसिंही ने भी
नाखूनों से उर कर विदीर्ण।
असुरों के दलपतियों तक के
तन किये चीर कर जीर्ण-शीर्ण॥
कितने बल-शाली महादैत्य
सुन शिवदूती का अट्टहास।
हो गये क्षणों में भू-शायी
भय के कारण बन मृत्युग्रास॥

इस भाँति मातृगण विकट रूप
धर कर करती थीं महायुद्ध।
कटती जाती थी असुर-सेन
होती जाती थीं देवि क्रुद्ध॥
पीड़ित देखे जब महादैत्य
तब लगे भागने असुर-क्षुब्ध।
यह देख भयानक रक्त बीज
आया करने के लिये युद्ध॥
उस रक्तबीज के तन से जब
शोणित-कण झरते थे भू पर।
तब उस जैसे ही महाबली
बनते थे अन्य दैत्य सत्वर॥
जितनी बूँदें भू पर झरतीं
उतने ही रक्तबीज बनते।
फिर रचते भीषण युद्ध और
जग - जननी के सम्मुख अड़ते॥
कुछ काल समर कर रक्तबीज
इन्द्राणी के सम्मुख आया।
ले गदा हाथ में अति-प्रचण्ड
बन कालकेतु वह लहराया॥
तब रोषातुर इन्द्राणी ने
कर दिया बज्र का प्रबल वार।
उस महादनुज के तन से तब
बह चली रक्त की तीव्र-धार॥
ज्यों-ज्यों बूँदे भू पर गिरतीं
त्यों-त्यों बढ़ता जाता खल-दल॥
रण के सागर में ज्वार उमड़
करता उत्तेजित पौरुष-बल॥
वे रक्तबीज फिर गरज - तरज
मातृगण से भिड़ गये सभी।
सब मातृशक्तियाँ कुपित हुईं
हो चली रुधिर से लाल मही॥

ले चक्र वैष्णवी ने काटा
खल के अंगों को बार-बार।
कौमारी ने निजशक्ति उठा
तत्काल किया घातक प्रहार॥
वाराही ने असि - वार किया
माहेश्वरि ने भीषण त्रिशूल।
निज भुज-बल का बल तोल दिया
दानव के उर में तुरत हूल॥
माताओं ने कर कोप किये
थे व्यर्थ वहाँ वे सब प्रहार।
शोणित के जितने बिन्दु झरे
उतने जन्मे दानव-अपार॥
वे सब ले कर में चण्ड गदा
अति भीषण समर लगे करने।
क्रोधित माताओं के हाथों
पल-पल में दुष्ट लगे मरने॥
पर जितने मरते थे उनसे भी
अधिक उपजते थे पल में।
कट रहे निरन्तर थे फिर भी
थी कमी नहीं दानव - दल में॥
विद्युतगति से भीषण-प्रहार
करतीं मातायें बार-बार।
पर बढ़ते जाते रक्तबीज
संख्या होती जाती अपार॥
धीरे-धीरे सम्पूर्ण जगत
फिर उनसे व्याप्त लगा होने।
लख युद्ध-यत्न निष्फल सारे
सुरगण तब धैर्य लगे खोने॥
संख्या बल वर्द्धित देख-देख
दानव-दल में बिखरा सुहास।
भयभीत - त्रस्त - कंपित - शोषित
थे देव - वृन्द अतिशय उदास

यह देख कुपित हो चण्डी ने
तत्काल कहा यों काली से।
बाघम्वर-धारिणि बल-शालिनि
मतवाली विकट-कराली से-
"विकराल मुखी! हे चामुण्डे!
खोलो, यह विस्तृत-मुख खोलो!
इस रक्त बीज के शोणित की
सारी बूंदे मुख में ले लो॥
मम शस्त्र-पात से रक्त - पात
जैसे ही हो इसके तन से।
जैसे ही उपजें महाअसुर
इस दानव के शोणित-कण से॥
वैसे ही अपने मुख में ही
भक्षण कर जाना तुम उनको।
इस भाँति जन्म लें जो दानव
कालिके! मिटाना तुम सबको॥
चामुण्डे! धर विकराल-रूप
बिचरो बन काल-रूप रण में।
यों क्षीण रक्त कर रक्तबीज
मैं मार मिटाऊंगी क्षण में॥"

इतना कहकर चण्डिका चलीं
चढ़ शार्दूल पर शूल उठा।
पथ रक्तबीज का रोक अड़ीं
संगर में खल के सम्मुख आ॥
फिर लक्ष्य साधकर फेंक दिया
वह शूल देवि ने खल उर पर।
जितना शोणित निकला व्रण से
वह लिया कालि ने जिव्हा पर॥
तत्काल झपट कर दानव ने
चण्डी पर गदा प्रहार किया।

चण्डी-वाहन ने भर उछाल
अरि का प्रहार बेकार किया॥
दुर्गे ने कर आघात-प्रबल
दानव का सब तन लून किया।
विकराल मुखी काली ने भी
हँस-हँस उसका सब खून पिया॥
जब गिरा अन्त में दानव तो
ले लिया कालिका ने मुख में।
जितने दानव जनमे वे सब
श्यामा ने खाये पल भर में॥
इस भाँति शस्त्र-संकुल-आहत
मिट गया दनुज हो रक्त-हीन।
धीरे-धीरे हो गयी देह
दानव की रण में प्राण-हीन॥

गये यों रक्त बीज के प्राण
हो गया देवों का परित्राण।
किया सुर-दल ने जय - जय - कार
सुनाये गन्धर्वों ने गान॥
नरेश्वर! हुईं विजयिनी देवि
घटी दानव सेना की शक्ति।
झरे नभ से चण्डी पर फूल
बढ़ी जग में देवी की भक्ति॥

कहा महीपति ने— "मुने! अद्भुत भाव-तरंग।
जिज्ञासा जागी प्रबल, सुन यह युद्ध-प्रसंग॥
रक्तबीज का बध हुआ, सुखी हुये सुर-वृन्द।
अब कहिये वह जिस तरह, हुआ असुर-मद मन्द॥"
ऋषि बोले- "राजन! सुनो, अब आगे का वृत्त।
मारा जैसे देवि ने, अरि निशुम्भ-दुर्वृत्त॥"

* * *

निशुम्भ-बध

बध रक्तबीज का जब देखा खलों ने
तब क्रोध में भरे वे दौड़े समर में।
लेकर प्रधान सेना को दानवों की
विकराल रूप धर सब धाये गरज-तरज कर॥
थे दाँत पीसते कुछ उस काल माँ पर
अति रोष से युगल कर कसकर मसलते।
कुछ काटते अधर को तीखे दसन से
कुछ लाल-लाल आँखे करके झपटते॥
दैत्याधिराज-शुम्भासुर भी कुपित हो
आया कराल-असि ले उस क्षण समर में।
करने लगा भयंकर संग्राम दानव
अत्यन्त शक्तिमयि उन मातृगणों से॥
संकल्प था असुर का— 'हत्या करूंगा
अति-शीघ्र आज रण में मैं चण्डिका की।'
अतुलित बली दनुज वह कब जान पाया
कितनी कराल-गति होती काल की है?
है काल ही जो क्षण में, देकर विजय श्री को
धन - मान - यश - विभव से सम्पन्न करता।
फिर भर हृदय-उदधि में अभिमान का विष
कर नष्ट बुद्धि-बल सब देता पराभव॥
जेता रहे कल तलक जो इन्द्रादिकों के
बन यज्ञ - भाग - भोगी - मानी असुरगण।
वे आज फँस नियति के अद्भुत निलय में
बनने चले बलि-पशू रण-यज्ञ भू-पर॥
अभिमान की भयंकर विष-वारूणी पी
दौड़े असुर सहोदर फिर चण्डिका पर।
यह देखकर कुपित माता चण्डिका भी
कर क्रोध आ गयीं तब सम्मुख खलों के॥

पल में छिड़ा भयानक सग्राम-भीषण
खर अस्त्र-शस्त्र दमके मानो तड़ित हों।
जगदम्बिका-शरों से खल बिछ गये यों
जैसे उपल-दलों से मृदु-शस्य बिछती॥
शुम्भ और निशुम्भ दोनों की वाण-वर्षा
थी सर्वथा व्यर्थ तब जगदम्बिका पर।
चण्डी अचल खड़ी थीं शरवृष्टि में यों
घनघोर-वृष्टि में ज्यों रहती अचल-शिल॥
वे कर रहीं विफल थीं खल - वार सारे
शर खण्ड-खण्ड कर देतीं निज शरों से।
कर बार-बार टंकार कोदण्ड की वे
भय भर चलीं चतुर्दिक् अग-जग कँपाती॥
उस काल चण्ड आघात किये भयंकर
चीरे शरीर चण्डी ने दानवों के।
जाज्वल्यमान - दीप्त - विद्युत-लता सी
तलवार शुम्भ सिर में मारी घुमाकर॥
तत्काल फिर पलटकर ले शक्ति भीषण
मारी निशुम्भ-तन पर जगदम्बिका ने।
आहत हुये असुर दोनों यों समर में
आक्रोश तब भयंकर उमड़ा उरों में॥
लेकर कराल-करवाल निशुम्भ ने तब
केहरि-ललाट पर किया आघात भारी।
झरने लगा रूधिर निर्झर-सा निरन्तर
यह देखकर जलीं ज्वाला - सी भवानी॥
लेकर क्षुरप्र तत्क्षण जगदम्बिका ने
कर खण्ड-खण्ड दी असि निशुम्भ कर की।
अति विकट ढाल जिस पर सम्पूर्ण-शशि से
अतिशय कठोर दृढ़ आठ तवे जड़े थे॥
कर नष्ट-भ्रष्ट वे भी जगदम्बिका ने
परिचय दिया अतुल-विक्रम का समर में।
आहत-कुपित असुर ने ले शक्ति-भीषण
छोड़ी प्रचण्ड पवि-सी पल में जननि पर॥

की चक्र से निरर्थक जब शक्ति माँ ने
तब शूल से किया भीषण वार खल ने।
पर चण्डिका मसलकर वह शूल कर से
करने लगीं विहँसकर उपहास खल का॥
लेकर गदा-परशु तब दौड़ा कुपित हो
खल मारने जननि को रण-प्रांगण में।
चण्डी निशुम्भ तन पर खर-शर चलाकर
करने लगीं अचेतन उसको समर में॥
होकर अचेत रण में ज्यों ही गिरा खल
त्यों ही समक्ष, आया दैत्येश माँ के।
उस काल क्रुद्ध-शुम्भासुर का पराक्रम
था सर्वथा भयंकर क्षण में समर के॥
भ्राता निशुम्भ को लख निश्चेत तत्क्षण
भरने लगा भयंकर हुंकार रण में।
हो रथारूढ़ उत्तम आयुध उठाकर
भासित हुआ भयंकर यमराज सा वह॥
ऊपर भुजा उठाकर, आकाश ढँककर
आता हुआ असुरपति लख चण्डिका ने।
होकर कुपित करी यों टंकार धनु की
मानो विनष्ट कर देंगी शब्द से खल॥
कर दीं दिशायें सभी गुञ्जित जननि ने
भरकर भयंकर-शब्द निज घण्टिका का।
त्रैलोक को कँपाया कर शंख की ध्वनि
केहरि-दहाड़ ने भी खल-दल डराया॥
इस भाँति जब दिशायें थीं शब्द-पूरित
तब कालिका उछलकर गरजीं गगन में।
लम्बे-कराल-कर फिर नभ में उठाकर
पटके अपार-गति से भू पर जननि ने॥
पवि-पात से भयंकर उस शब्द ने भी
भूतल हिलाया, कँपाकर दस - दिशायें।
कर अट्टहास उस क्षण शिव - दूतिका ने
भय भर दिया उरों में सब दानवों के॥

निर्भय खड़ा रहा पर सब शब्द सुनकर
रण में असुर - शिरोमणि बलवान-दानव।
भरता रहा भयंकर हुंकार नभ में
अग्रज निशुम्भ का वह मानी महासुर॥
तब लक्ष्य कर उसे कहा यों चण्डिका ने-
"रे दुष्ट! रह खड़ा तू पल भर समर में।
रण रंग-मत्त तेरी सारी प्रतिष्ठा
पल में अभी करुंगी मैं धूल-सी अब॥"
सुन देवि का कथन यह नभ से सुरों ने
की पुष्प-वृष्टि तत्क्षण जगदम्बिका पर।
जयकार कर दिशायें भर कर अमरगण
जिज्ञासु हो लगे करने युद्ध-दर्शन॥
बलवान-शुम्भ ने तब कर सिंह सी ध्वनि
फेंकी कराल-ज्वाला-सी शक्ति माँ पर।
आती हुई भयंकर वह शक्ति माँ ने
निष्फल करी उसी पल अपने शरों से॥
होने लगी भयंकर शर-वृष्टि रण में
जैसे घिरी घटाये हों रण-जलद की।
करने लगीं परस्पर शर-वार निष्फल
दोनों सुरी-आसुरी सत्ता जगत की॥
तीखे-प्रहार शर के निष्फल समझकर
भारी त्रिशूल चण्डी ने फिर चलाया।
वह बेधकर असुर उर यों छिप गया ज्यों
घन में विलीन शम्पा पल भर चमककर॥
आघात शूल का था अतिशय करारा
भू पर गिरा अचेतन हो शुम्भ तत्क्षण।
पर इसी बीच नवचेतना प्राप्त करके
करने लगा निशुम्भासुर वाण-वर्षा॥
आहत किया असुर ने तब चण्डिका को
आहत किया कालिका-केहरि सभी को।
धारण किये दंस-सहस कर दुष्ट ने फिर
करके प्रयोग निज आसुरि-शक्तियों का॥

लेकर कराल चक्रावलियाँ करों में
करने लगा सतत आवृत चण्डिका को।
तब हो कुपित दुर्गमा-दुर्गा जननि ने
काटी कठोर-शर से चक्रावली सब॥
तब शूल हाथ में ले दौड़ा असुर वह
जो कर दिया विफल चण्डी ने हुमक कर।
लेकर गदा-भयंकर आया असुर तो
तीखी-कराल असि से काटी गदा भी॥
अत्यन्त वेग से फिर जगदम्बिका ने
मारा त्रिशूल अपना निशुम्भ उर में।
छाती छिदी दनुज की तब वक्ष से ही
निकला भयंकर दनुज रण-रंग-व्याकुल॥
कहने लगा- "ठहर! ओ नारी! ठहर तू
हरता अभी सभी मद तेरा पलों में।"
सुन दैत्य का कथन यह चण्डी हँसी फिर
तीखा प्रहार कर असि से भाल काटा॥
विच्छिन्न भाल होते ही दुष्ट का यों
भू पर गिरा दनुज आहत हो उसी क्षण।
होकर प्रसन्न तब नाहर ने उछलकर
कुचली सुपुष्ट ग्रीवा निशुम्भ की तब॥
फिर फाड़कर असुर तन तीखे-नखों से
खाने लगा केहरी अरि-माँस-मज्जा।
उस काल कालिका-शिवदूती सभी ने
कर हर्षनाद खाये तन दानवों के॥
अपार सेना भी दानवों की
मिटी क्षणों में रण-मध्य भू - पर।
कटे अधिकतर आहत हुये कुछ
भागे बहुत से रण-भूमि तजकर॥
मरा हुआ लख निशुम्भ रण में
मुदित हुये मन अमर गणों के।
भू से गगन तक जय नाद गूँजा
जय-जय-जयति - जय - जय-जय भवानी

शुम्भ-बध

देखकर मरा हुआ निज भ्रात
रोष से जला शुम्भ का गात।
काँपने लगा क्रोध से असुर
देखकर रण में अपनी मात॥
लगा कहने- "रे! दुर्गे! ठहर!
करे मत अपने मन में गर्व।
हराकर तुझे समर में अभी
गर्व करता हूँ सारा खर्व॥
मानिनी! कर मेरा अपमान
किया तूने भारी अपराध।
अभी इस रण-थल में ही आज
मिटाता हूँ तेरी रण-साध॥
मार कर मेरा अनुज निशुम्भ
किया तूने असुरों पर क्रोध।
पराक्रम से तुझको कर नष्ट
अभी मैं ले लूँगा प्रतिशोध॥
समर में औरों का साहाय्य
सँजोकर करती है संग्राम।
अभी मैं अपने बल पर तुझे
दे रहा हूँ पूर्ण - विश्राम॥"

कहा दुर्गे ने - "ओ खल! मूढ़!
अकेली ही हूँ मैं रण - बीच।
ये सभी मेरे विविध-स्वरूप
जिन्हें तू पृथक् समझता नीच॥
जगत सारा मुझसे ही व्याप्त
अकेली मैं ही सूत्रधार।

सिवा मेरे बलशाली कौन
सृजन-पालन मैं ही संहार॥
धरा धारे हैं मेरे चरण
टिका मेरे किरीट पर व्योम।
दिशायें मेरी बाहु अनन्त
रूप मेरा प्रकाश तम-तोम॥
अमरगण पा मेरा साहाय्य
मुदित नित करते मंगल - गान।
विविध-विधि कर अर्चन सम्पन्न
सदा गाते मेरा जयगान॥
बिना मेरे शिव भी शव - रूप
बिना मेरे सुर आश्रय-हीन।
बिना मेरे ब्रह्माण्ड शून्य
बिना मेरे मानव अति दीन॥
जगत का कण-कण मम-आवास
व्योम जल-थल सब में मम वास।
शक्ति बन बसी हुई सर्वत्र
चतुर्दिक् मेरा विभव- विलास॥
देख ये सकल-शक्तियाँ शीघ्र
हुई जातीं अब मुझमें लीन।
खड़ी हूँ मैं निर्भय रण-बीच
तुझे करने को प्राण-विहीन॥''
देवि के तन में तत्क्षण वहाँ
मातु सब होने लगीं प्रविष्ट।
अकेली बचीं अम्बिका मात्र
शीघ्र करने को असुर-अनिष्ट॥

कहा देवी ने फिर ललकार-
''देख मेरा अपार-विस्तार।
शक्तियाँ अपनी सभी समेट
करूँगी अब तेरा संहार॥

खड़ी हूँ मैं एकाकिनि मूढ़
समर में सुस्थिर होकर आज।
सुरों के परित्राण के लिये
सजा संगर के सारे साज॥
असुर-अधिपति अब तू भी आज
शीघ्र कर ले निज-बल-आह्वान।
अभी करती हूँ पल भर बाद
दनुज! तुझ पर सायक-संधान॥"

चकित हो लगे देखने देव
छिड़ा फिर भीषण-रण-विकराल।
लगे उड़ने रण-नभ में तुरत
उभय-पक्षों से सायक-व्याल॥
चमकते थे शंपा से शस्त्र
शरों का भीषण झंझावात।
बरसता था जलकण सा लहू
काँपते तरु से आहत गात॥
रूधिर का तीव्र - तरल - प्रवाह
धरा पर बहता था ले वेग।
ढहे जाते थे तरु से असुर
भरा था हर मन में उद्वेग॥
भीत था सारा देव समाज
देखकर देवि-शुम्भ का युद्ध।
भिड़ीं थीं दोनों शक्ति-प्रचण्ड
प्राण हरने को होकर क्रुद्ध॥
अम्बिका की भीषण-शर-वृष्टि
शुम्भ ने डालीं पल में काट।
शुम्भ की प्रबल आसुरी-शक्ति
अम्बिका ने भी डाली छाँट॥
असुर के सारे शस्त्र-प्रहार
हो गये पल भर में बेकार।

क्रुद्ध-जगदम्बा ने जब भरी
समर के प्रांगण में हुंकार॥
उठा कर में कराल-कोदण्ड
असुर ने छोड़े वाण-प्रचण्ड।
भगवती ने भी तब शर मार
किया कोदण्ड-चण्ड दो-खण्ड॥
शरासन होने पर यों नष्ट
असुरपति लेकर शक्ति-कराल।
हुमक कर चला देवि की ओर
नयन अपने दोनों कर लाल॥
क्षुब्ध होकर तब दानवराज
चला करने अम्बा का नाश।
चला कर चक्र, शक्ति को काट
किया जगदम्बा ने उपहास॥
शुभ्र-सौ-शशि वाली सुविशाल
ढाल-विकराल काल-करवाल।
उठाकर धाया माँ की ओर
विक्रमी शुम्भासुर तत्काल॥
देख दानव का धावा घोर
धनुष की कर भीषण टंकोर।
सूर्य की आभा से द्युतिमान
चलाये शर दानव की ओर॥
शरों ने कर असि के सौ-खण्ड
ढाल डाली दानव की तोड़।
काट रथ - केतु, मारकर बाजि
दिया सारथि का मस्तक फोड़॥
हुआ यों दानव स्यन्दन-हीन
कट गया कर का भी कोदण्ड।
उठा मुग्दर तब करके क्रोध
चला करने माँ के दो खण्ड॥
क्रुद्ध अरि को यों आता देख
दिया मुग्दर देवी ने काट।

तानकर बज्रमुष्टि तब अड़ा
रोक कर असुर देवि की बाट॥
भयंकर अट्टहास कर दनुज
झपटने लगा देवि की ओर।
देवि-उर पर कर मुष्टि-प्रहार
मचाने लगा जोर से शोर॥
किया तब अम्बा ने आघात
असुर के उर पर पटका हाथ।
नहीं सह पाया जब कर वार
गिरा तब खाकर दैत्य पछाड़॥
सँभल कर फिर सहसा उठ पड़ा
भरी भू से नभ ओर उछाल।
देवि को लेकर अपने साथ
व्योम में ठहर गया तत्काल॥
गगन में बिना किसी आधार
हुये सुस्थिर दोनों उस काल।
लगा होने दोनों के बीच
गगन में ही संगर विकराल॥
पड़े विस्मय में नर-सुर-सिद्ध
देखकर उनका भीषण - युद्ध।
पटक फिर दिया भूमि पर शुम्भ
देवि ने होकर अतिशय-क्रुद्ध॥
पटक खाने पर भी वह दुष्ट
तड़प कर उठ बैठा तत्काल।
चण्डि की हत्या का संकल्प
हृदय में ले दौड़ा बन ज्वाल॥
वेग से रिपु को आते देख
किया अम्बा ने शूल-प्रहार।
छेद कर खल का चौड़ा वक्ष
कर दिया दानव का संहार॥
छिदी छाती तब दैत्यराज
गिरा करके तारक चिंघाड़।

दिशायें उठीं भीति से डोल
हिले भूतल के अचल पहाड़॥
धरातल पर आया भूचाल
काँपने लगे गगन पर दीप।
हिला पारे सा पारावार
लगे थर्राने सारे द्वीप॥
रहीं कुछ क्षण तक व्याप्त भीति
मरा जब दनुजों का अधिराज।
हुई फिर सारी सृष्टि प्रसन्न
देखकर जग में फिर सुर-राज॥

प्रकाशित हुये सूर्य-बुध-सोम
बने मंगल, मंगल तत्काल।
रहा गुरु गुरु-गौरव अक्षुण्ण
हो गयी सारी सृष्टि निहाल॥
शमित थे सब अनिष्ट के चिन्ह
शमित था नभ से उल्कापात।
शमित थी उपल-रूधिर की वृष्टि
शमित थे सारे झंझावात॥
शान्त हो गये सकल भूचाल
गये जब दानवेश के प्राण।
हो गयी सारी सृष्टि निहाल
हो गया अग-जग का परित्राण॥
गगन ने दिया ज्योति का दान
हुआ नदियों में निर्मल नीर।
वही दिशि-दिशि में सुरभित वात
मिटी जब अमर - उरों की पीर॥
किया देवों ने दुन्दुभि-नाद
लगे गन्धर्व बजाने वेणु।
नृत्यरत हुईं अप्सरा आदि
चमकने लगी रजत - सी रेणु॥

कुहासे की काली - घन - पर्त्त
काट कर उदित भानु थे लाल।
बुझी मखशालाओं की अग्नि
पुनः प्रज्वलित हुई उस. काल॥
शान्त थे सभी भयंकर शब्द
शान्ति सर्वत्र रही थी राज।
स्वधा - स्वाहा के मंगल-घोष
व्योम में लगे गूँजने आज॥
देवि के भक्ति-भाव-युत गीत
गगन में भर नूतन संगीत।
जगाकर श्रद्धा के शुचि-मन्त्र
लगे देने सुखमय नवनीत॥

हुआ शुम्भ-संहार, जैसे वह तुमसे कहा।
राजन बारम्बार, करो नमन जग-मातु को॥
दिया इन्द्र को जिस तरह, माता ने फिर राज।
वैसे ही तुमको पुनः, दें वे राज-समाज॥
खोया बल-वैभव सकल, शान्ति-सुत-सम्मान।
पाओ पुनः समाधि तुम, कर जननी-जयगान॥
आगे की शुभ-गाथ, करता हूँ प्रारम्भ अब।
श्रद्धा से नत-माथ, झुका देवि के पगों पर॥
विनती बारम्बार, प्रमुदित सुर करने लगे।
माँ की जय-जय कार, गूँज उठी हर दिशा में॥

* * *

वरदान

जगदम्बिके! तुम्हारे बल से जगत के
अघ-कुम्भ आज फूटे, टूटे अनय-गढ़।
पातक-पहार पल में जल रज बने ज्यों
दावाग्नि में झुलसकर तरु क्षार होते॥

कात्यायनी! तुम्हारी कोपग्नि द्वारा
जग में जला असुरदल त्यों ही समर में।
ज्यों वाड़वाग्नि सागर के गर्भ में रह
बिनु ज्वाल है जलाती जल नित जलधि का॥

इस काल माँ! तुम्हारी जय की प्रभा से
जगमग जगीं दिशायें भू-नभ मुदित हैं।
पाकर अभीष्ट रण में मुख-द्युति तुम्हारी
लेकर अपार-आभा सुख-शान्ति देती॥

भयहारिणी जगत की सुख-शान्ति कारिणि
होकर प्रसन्न सब पर सब को सुखी कर।
जगदम्बिके! मुदित हो दो भक्ति-सम्बल
आश्रय-प्रदायिनी! अब आश्रय हमें दो॥

विश्वेश्वरी! तुम्हीं से रक्षित सभी हैं
अतएव प्रसन्न होकर रक्षा करो माँ!
तुम स्वामिनी जगत की, जननी हमारी जग-
जगदीश्वरी! चराचर निर्भय करो सब॥

अतुलित-अपार-विक्रम माता तुम्हारा
जल-थल गगन सभी पर नित छा रहा है।
एकाकिनी जननि उर्वी बन तुम्हीं तो
आधार दे रही हो सारे जगत को॥

जल-रूप में तुम्हीं माँ! जीवन जगत का
गिरि-श्रृंग पर सघन-हिम-कन बन जमी हो।
सरि-धार में तुम्हारी लीला लहरती
द्रव-रूप में झरी निर्झरिणी तुम्हीं हो॥

संसार हेतुःभूता माया परा तुम
तुम बीज रूपिणी हो सारे जगत की।
मोहित किया तुम्हीं ने मन को सभी के
तुम ही प्रसन्न होकर निर्वाण देतीं॥

हे वैष्णवी! तुम्हारी महिमा अपरिमित
तुम हो अनन्त-बल-विक्रम - बुद्धि-संयुत।
लोकोपकार माता! व्रत है तुम्हारा
जगदम्बिके! जगत की गति भी तुम्हीं हो॥

भू पर सदैव प्रतिकृति नारी तुम्हारी
सर्वत्र हो विराजित महिमामयी तुम।
विद्या विविध तुम्हीं हो असंख्य रूपिणि
है विश्व व्याप्त सारा माता! तुम्हीं से॥

है कौन विश्व में जो महिमा तुम्हारी
प्रस्तुत करे जगत में शब्दादि द्वारा।
निर्मात्री तुम्हीं, तुम संहार कर्त्री
तुम आदि-अन्त सबकी शिवरूपिणी माँ॥

प्रज्ञा स्वरूपिणी! तुम सबके उरों में
करतीं निवास सबको सत्पथ दिखातीं।
नारायणी! तुम्हीं तो निर्वाण देकर
हरतीं कलेश सारा आवागमन का॥

करते तुम्हें नमन हम हे स्वर्ग दायिनि!
निर्भय करो, हमारे संशय हरो सब।
नाना-कलामयी माँ! काष्ठादि रूपा!
परिणाम रूपिणी तुम, तुमको नमन है॥

मंगलमयी जननि तुम मंगल-प्रदा नित
हो सर्व-अर्थ दायिनि माँ! सृष्टि में तुम।
नारायणी तुम्हीं हो, गौरी तुम्हीं माँ!
तुम तीन-नेत्र-धारिणि शिवकारिणी शुभ॥

आये शरण तुम्हारी हम आज माता!
गुण आश्रयी! गुणमयी! जगशक्तिभूता।
नारायणी! सनातनि! तुमको नमन शत
अयि वत्सले! शरण दो शरणागतों को॥

पीड़ित-दलित जनों की दुखहारिणी तुम
हँसासिनी! तुम्हीं ब्रह्माणी कहातीं।
माहेश्वरी! त्रिशूलिनि! शशि-सर्प-धारिणि
वृषभासिनी! तुम्हारे पग पर नमन है॥

परिवृत मयूर-कुक्कुट-खग संकुलों से
कौमारि-रूप-धारिणि शिखि-वाहिनी तुम।
है महाशक्ति भूषित कर में तुम्हारे
जो खण्ड-खण्ड करती जग के कलुष को॥

कर में कराल-सुविशाल कोदण्ड-धारिणि
शुभ-शंख-चक्र-गदिका युत वैष्णवी तुम।
वाराह-रूप धारिणि! परित्राण-कारिणि!
रक्षा करो हमारे हित की निरन्तर॥

नरसिंह रूप धर दनुजों की
संहार-कारिणी! नमस्कार।
मस्तक पर परमोज्ज्वल - किरीट
धारिणि! तुमको शत नमस्कार॥
त्रिभुवन-रक्षा-रत जगन्मात!
नारायणि तुमको नमस्कार।
हे महावज्र-धारिणि माता!
नारायणि तुमको नमस्कार॥

जय सहस्राक्षि! उद्दीप्त-मूर्ति!
जगदम्बे! तुमको नमस्कार।
जय वृत्तासुर-जीवन-हारिणि!
इन्द्राणी! शत-शत नमस्कार॥
खल-दल संहारिणि! शिव - दूती!
तुमको शत-शत-शत नमस्कार।
जय भीम-रूपिणी! घन-ग़र्जिनि!
नारायणि! तुमको नमस्कार॥
विकराल-मुखी! दाढ़ों वाली!
जय-मुण्ड-मालिनी! नमस्कार।
जय मुण्ड-मार्दिनी! चामुण्डे!
नारायणि शत-शत नमस्कार॥
लक्ष्मी! लज्जा! श्रद्धा-रूपिणि!
जय ध्रुवा! स्वधा! शत नमस्कार।
जय महा अविद्या-विद्या मयि!
जय महा - रात्रि माँ! नमस्कार॥
हे मेधा - रूपिणि! सरस्वती!
तेरे चरणों में नमस्कार।
जय भूति! वाभ्रवी! वरा! पुष्टि!
जग-जननी! तुमको नमस्कार॥
जय महाकालिके! नमस्कार
संयम-परायणे! नमस्कार।
जय सर्व-स्वरूपे! नमस्कार
ईशा! नारायणि! नमस्कार॥
जय सर्व-शक्तिमयि दिव्य - रूप!
दुर्गा! भयहारिणि! नमस्कार।
जय त्रयम्बके! जय कात्यायनि!
अम्बे! शत - शत - शत नमस्कार॥
जिसकी दाहक ज्वालाओं में
जलकर खल-दल हो गया क्षार।
जय ज्वलित-शूल-धारिणि जननी!
माता! शत-शत-शत नमस्कार॥

जिसकी प्रचण्ड-ध्वनि सुनते ही
रिपु-दल करता स्वीकार हार।
माँ! वह घण्टा अब हम सबके
पापों का कर डाले संहार॥
असुरों की चर्बी से चर्चित
असि करे पापियों पर प्रहार।
जो अभयदान देती जग को
उस प्रखर - खड्ग को नमस्कार॥

प्रसन्न होकर अघ-नाश करतीं
हरतीं सकल दुख संताप मन के।
होकर कुपित तुम जननी जनों के
प्रति काम-तरु पर पवि-पात बनतीं॥

आये शरण में जो जन तुम्हारी
निर्विघ्न रहते सुख से जगत में।
पाया जिन्होंने आश्रय तुम्हारा
आश्रय बने वे जन अन्य के भी॥

धारण किये तन तुमने बहुत से
किया असुर-दल पल में विमर्दित।
है शक्ति किसमें जो कर सके यों
संहार असुरों का एक पल में॥

माता! तुम्हीं दीप विवेकमय हो
तुम ही बसी हो वेदोक्तियों में।
सिवा तुम्हारे है कौन जो यों
करे प्रकाशित विद्यामठों को॥

देवी! तुम्हीं ने मोहित किया है
संसार सारा ममता-तिमिर से।
निर्वाण दायिनि! तुम ही जगत की
तुम ही फँसातीं भव के भँवर में॥

जहाँ विषैले फणिधर बसे हैं
बसे जहाँ पर दानव भयंकर।
सिवा तुम्हारे है कौन रक्षक
माता! वनों की भीषण-अनल में॥

तूफान-झंझागति में, प्रलय में
हे विश्व रूपा! तुम रक्षिका हो।
विश्वेश्वरी! पालन - कारिणीं तुम
तुम वन्दनीया विश्वेश द्वारा॥

माता! किया है जैसे अभय अब
वैसे सदा रहना रक्षिका बन।
सम्पूर्ण जग के अघ नष्ट करके
रक्षा करो जग-जननी हमारी॥

निर्भय रहें जन जग में मुदित हो
शमित रहें व्याधियाँ सभी की।
कहीं उपद्रव कोई न हो अब
जग सब सुखी हो तेरी कृपा से॥

विश्वार्त्ति-हारिणि! हर विश्व-पीड़ा
सुखी करो सब शरणागतों को।
पड़े हुये हैं पग पर सभी हम
त्रैलोक्य-पूज्या वरदान दो अब॥

सुन देवों की विनय यों, प्रमुदित जगदम्बा हुई।
फिर सुर-गण पर कर कृपा, अभयदान देने लगीं॥
आशाओं के फूल, महक उठे सर्वत्र।
कटे भीति के शूल, जगदम्बा के शब्द से॥

* * *

आश्वासन

कहा देवी ने तब तत्काल -
"माँग लो जो इच्छा हो आज।
सुखी हूँ सुनकर विनती - गान
बनाऊँगी सब बिगड़े काज॥"
देव बोले होकर सन्तुष्ट -
"अगर जग-जननी आज प्रसन्न।
अभय कर सारा संत-समाज
करें खलदल सर्वथा विपन्न॥
जगत का हर कर यों ही भार
सतत करती रहना कल्याण।
अम्बिके! हर कर बाधा-विघ्न
खलों के हरती रहना प्राण॥"
अभय-मुद्रा धारण कर देवि
सुरों से बोलीं यो तत्काल-
"बढ़ेगा जब-जब अत्याचार
बनूँगी तब-तब खल-दल-काल॥
महासुर शुम्भ-निशुम्भ कराल
धरा पर लेगे जब अवतार।
विन्ध्य पर कर उस काल निवास
करुँगी मैं उनका संहार॥
भयानक विप्रचित्ति बलवान
करेंगे भू पर अत्याचार।
प्रकट होकर मैं ही उस काल
करुँगी उन सब का आहार॥
असुर तन का कर शोणित पान
दिखेंगे मेरे दसन अनार।
कहेंगे रक्त-दन्तिका सभी
स्वर्ग में सुर, भू पर नर - नारि॥

रहेगी अनावृष्टि सौ साल
धरा पर होगा विकट अकाल।
हृदय में भरकर श्रद्धा-भाव
करेंगे ऋषि विनती तत्काल॥
धारकर तब अयोनिजा रूप
करुँगी भूतल का उद्धार।
देख शत-नयनों से मुनि ओर
कहाऊँगी शताक्षि उस बार॥
उगाकर अपने तन से शाक
करूँगी मैं जग का उद्धार।
भरण-पोषण का गुरु दायित्व
निभाऊँगी मैं शत-शत बार॥
कहेगा शाकम्भरि नर-लोक
करेगा मेरा ही यश गान।
तभी दानव दुर्गम को मार
कहाऊँगी दुर्गा अभिधान॥
धार कर मैं ही भीम - स्वरूप
करूँगी दुष्टों का संहार।
भक्ति से नतमस्तक हो लोग
कहेंगे भीमा शक्ति अपार॥
अरूण संज्ञक दानव विकराल
मचायेगा जब हा-हा कार।
धारकर तब मैं षट्पद रूप
करूँगी उस खल का संहार॥
भ्रामरी कहलाकर उस काल
कीर्ति पाऊँगी अतुल-अपार।
सुखी होकर सारा संसार
करेगा मेरी जय-जय कार॥
इस तरह जब दानव उत्पात
उपस्थित होगा लोक - समक्ष।
करूँगी तब-तब उनका नाश
शोक हरकर होकर प्रत्यक्ष॥

सुरवृन्द! जो करेगा विनती हमारी
उसकी समस्त बाधायें मैं हरूँगी।
जो भक्ति -युक्त चित से चिन्तन करेगा
मम रूप का, सदा वह निर्भय रहेगा॥

मधु-कैटभादिकों की मर्दन-कथायें
शुम्भादि की भयंकर परिणाम - गाथा।
विश्वास - प्रेम - श्रद्धा - संयुत हृदय से
जो जन कहें-सुनेंगे, दुख-मुक्त होंगे॥

अष्टम - नवम - चतुर्दश तिथि में विनत हो
आराधना करेंगे जो जन हमारी।
मेरी महात्म्य - गाथाओं में रमेंगे
वे पाप-मुक्त होंगे मेरी कृपा से॥

विश्वास की सुरभि से सुरभित हृदय कर
जो अर्चना करेंगे मेरी धरा पर।
आपत्ति मुक्त होंगे वे निष्कलुष जन
दारिद्रय-पाश सारे उनके कटेंगे॥

प्रियजन-बिछोह की दारुण-यातनायें
होंगी कभी न दाहक मम अर्चकों को।
अरि-दस्यु - भूप-ज्वाला-जल-शस्त्र से भी
निर्भय सदा रहेंगे मेरे उपासक॥

मेरी सुयश कथा है कल्याण-कारिणि
अतएव पठन श्रवण कर इसका निरन्तर।
निर्भय रहो जगत में सुख-शान्ति - युत हो
मैं पाप-ताप सारे हरती रहूँगी॥

होता जहाँ भजन-पूजन नित्य मेरा
कहते जहाँ उपासक मेरी कथायें।
रहती सदा वहाँ मैं सुख - सौम्य - रूपा
करती सुखी सभी को संतान देकर॥

बलिदान - होम - पूजा के अवसरों पर
मेरा चरित्र गायन करते जहाँ जन।
होकर प्रसन्न करती मैं हूँ ग्रहण सब
विधि हीन हो कि विधि संयुत होम-अर्चन॥

शुभ काल में शरद् के मेरा महार्चन
प्रतिवर्ष भक्त करते होकर मुदित मन।
उस काल इस कथा को जो भी सुनेगा
धन-धान्य-पुत्र युत वह होगा धरा पर॥

इसमें नहीं है संशय अब शेष कुछ भी
निर्विघ्न भक्त होंगे मेरी कृपा से।
उत्पत्ति की कहानी मेरी करेगी
सुख-शान्ति-वृद्धि जन की भू पर निरन्तर॥

मेरा प्रचण्ड - विक्रम भव-भय हरेगा
मेरी विजय - कथायें निर्भय करेंगी।
मेरा महात्म्य सुनकर अरि क्षीण होंगे
कल्याण प्राप्ति होगी मम अर्चकों को॥

मेरी कृपा - रश्मियाँ विकसित करेंगी
नित कमल के दलों सा अर्चक कुलों को।
सारे कलेश हरकर प्रमुदित करूँगी
कर पल्लवित सभी शुभ आशा लतायें॥

बाधा पड़े यदि कहीं शुभ कर्म में तो
मेरा करे सुस्मरण मैं विघ्न-नाशिनि।
दुःस्वप्न दें दिखायी तो भक्त जन नित
मेरी सुयशकथा सुन भय - मुक्ति पायें॥

जब हो कहीं किसी को ग्रहजन्य पीड़ा
मेरा चरित श्रवण कर सुख-शान्ति पाये।
दुःस्वप्न नष्ट होकर सुस्वप्न होंवे
हों विघ्न शान्त, चित में शान्ति समाये॥

विघटन जहाँ कहीं हों, मेरी कृपा से
हों संगठन सुखद, यशदायी धरा पर।
फूले-फले वल्लरी शुभ-मैत्री की
होवे जगत सुवासित सुख की सुरभि से॥

मेरा महात्म्य कर दे बल नष्ट खल का
मेरी कलित-कथायें भय-हारिणी हों।
मेरा चरित्र नाशक हो पातकों का
मेरा सुयश हरे सब पीड़ा धरा की॥

मेरे महात्म्य के शुभ अध्ययन-श्रवण से
हो सर्वनाश सारी दुश्शक्तियों का।
सामीप्य हो सुलभ उन सबको हमारा
जो भक्ति-युक्त-चित से सेवा करें नित॥

नैवेद्य - धूप - दीपादि सुगन्ध द्वारा
अर्चन करे हमारा जो शुद्ध चित से।
पशु - पुष्प - अर्घ्य अर्पित मुझको करे जो
वह हो सुखी सब तरह भू पर निरन्तर॥

मख-ब्रह्मभोज-अर्पण उत्कृष्ट-द्रव का
अभिषेक आदि देता आह्लाद जितना।
उससे कहीं अधिक मैं सन्तुष्टि पाती
अपना महत्व सुनकर नित स्तवन में॥

मेरा चरित्र अनुपम सुख-शान्ति देता
कर पाप नष्ट सारे जन्मान्तरों के।
सब रोग - शोक हरकर आरोग्य देती
होकर प्रसन्न मैं अपने सेवकों को॥

उत्पत्ति-कीर्तन से मिलती सुरक्षा
हैं दानवादि मिटते रण की कथा से।
निर्भय मनुष्य पाता बल-बुद्धि-विक्रम
मेरी कृपा-सरित में अभिषिक्त होकर॥

निर्जन-सघन-विजन में जन शून्य पथ पर
अथवा गहन-विपिन की दाहक-अनल में।
खल-दुष्ट-दस्यु- दल में या शत्रुओं में
पड़कर निरीह जन जब मुझको बुलाता॥

तब शीघ्र प्राण रक्षा करती स्वजन की
हरती समस्त संकट उस भक्त जन का।
आखेट बन रहा हो वन में त्रसित जो
वन करिन्- व्याघ्र - केहरि का कोपभाजन॥

भूपाल क्रुद्ध होकर यदि त्रास देवे
कर पाशबद्ध रक्खे कारागृहों में।
अथवा करे निर्गमित बध आज्ञायें
तो भी न बाल बाँका होता भगत का॥

विश्वास युक्त श्रद्धामय चित्त से यदि
करता विपत्ति में जन चिन्तन हमारा।
तत्काल हो उपस्थित हरती सकल-दुख
देकर अभय स्वजन को निर्बन्ध करती॥

गम्भीर-सिन्धु-जल में तूफान पल में
आसन्न मृत्यु होती जब भक्त-जन की।
तब भी सदा बनी रहती हूँ सहारा
पतवार - धैर्य - साहस बनकर हृदय में॥

होते प्रहार रण में जब अति भयंकर
बलवान शत्रु करता है भय उपस्थित।
तब भी सदा बचाती बल रूप बन मैं
अनुरक्त भक्त जीवन को दे सुरक्षा॥

मेरा चरित्र नाशक है सब अघों का
संरक्षिका सदा मैं सबके सुकृत की।
मेरी कृपा कवच बन जिनको बचाती
उनके निकट न आते हिंसक लुटेरे॥"

यों कर कथन स्वमहिमा का भगवती माँ
तत्क्षण हुईं तिरोहित सुर-वृन्द सम्मुख।
निर्भय हुये सुर-सकल माँ की कृपा से
पाने लगे अशन फिर यज्ञांश से वे॥

दैत्येश-शुम्भ के मरने पर दनुज-दल
पाताल-लोक में जाकर बस गया तब।
त्रैलोक में विराजी सुखदा-समृद्धि
जब शान्ति-राज्य छाया भू से गगन तक॥

इस भाँति विश्व में वे माता भवानी
होकर प्रकट सदा हरती हैं सकल-दुख।
जो पूजते, उन्हें वे सुख-शान्ति देतीं
धन - बुद्धि - पुत्र उत्तम-गति दान करतीं॥

* * *

कृपा

राजन! कही तुमसे कथा संक्षेप में उस शक्ति की
जिसकी युगों से विश्व में सुर-नर सभी ने भक्ति की।
जिसने धरा पर धर्म का ध्वज स्वयं आरोपित किया
जिसने हुलसकर दुर्जनों के वक्ष से शोणित पिया॥

जो नित दयामयि सौम्य रूपा जगत के हित के लिये
जो सुखमयी शिव-शान्ति-दायिनि शक्ति है सबके लिये।
वह पापियों के नाश के हित सदा कुलिश-कठोर है
वह गति प्रभञ्जन की प्रबल है प्रलय-घन-रव-घोर है॥

जो धर्म-साधन साधना है, अर्थ का आधार है
जो कामनाओं की सकल सम्पूर्ति का भण्डार है।
निर्वाण-दायिनि शक्ति वह संसार-संचालिनि वही
जो सृजन-पोषण-कारिणी है सृष्टि - संहारिणि वही॥

नारी-वपुष में कर रही वह आद्य शक्ति निवास है
वह कोटि-युग से हर रही त्रैलोक का सब त्रास है।
जो जान अबला-नारि-रूपा क्रुद्ध करते हैं उसे
वे दुष्ट शुम्भ-निशुम्भ के सम मृत्यु से जाते डँसे॥

वह शान्ति-शिवकारिणि-शिवा जब काल बनकर टूटती
तब काल की भी वीरता रणधीरता सब छूटती।
वह सौम्य-रूपा सुख स्वरूपा कालिका विकराल है
अघतूल पर्वत के लिये जाज्वल्य-ज्वाल-कराल है॥

अतएव नारी रूप-व्यापिनि शक्ति को पहचान कर
उसमें निहित संताप-मोचिनि शक्ति का सम्मान कर।
पाओ कृपा जगदम्बिका की सृष्टि के कल्याण हित
दुख-पाप-शाप विहीन सुखमय लोक के निर्माण हित॥

जो ज्ञान रूपा देवि जप-तप पंथ से नित प्राप्त हैं
जो प्रकृति-रूपिणि मोह बनकर सकल जग में व्याप्त हैं।
राजा सुरथ! संसार की संचालिका वे भगवती
तुझ सर्वहारा का हृदय हैं बार-बार विमोहती॥

उन लोक धारिणि देवि का सर्वथा अतुल-प्रभाव है
उनसे हुआ त्रयलोक का त्रयकाल-आविर्भाव है।
लीलामयी उस शक्ति का वैभव अनन्त-अपार है
मन-बुद्धि- दृग जाते जहाँ तक उसी का विस्तार है॥

वे शेष शायी विष्णु की माया स्वरूपा जग जननि
विद्या-अविद्या रूपिणी संताप-हारिणि शिव-करिणि।
नाना-स्वरूपिणि भगवती मोहित जगत सब कर रहीं
वे ज्ञानियों का ज्ञान भी बलपूर्वक हैं हर रहीं॥

वे ही बसीं सन्देह बनकर चित्त में सबके सदा
अज्ञान तम-मय कूप में वे ही गिरातीं सर्वदा।
वे ही प्रकाशित बुद्धि-दीपक कर रही हैं उरों में
वे ही भयंकर मोह तम हैं भर रहीं उर गुहों में॥

मायामती वे भगवती हरती रही हैं ध्यान को
वे हर रही हैं और आगे भी हरेंगी ज्ञान को।
करतीं व्यथित वे ही तुम्हारा चित्त भूप! यदा-कदा
हरतीं वही हैं बुद्धि सर्व समाधि-मन की सर्वदा॥

हो अब न रञ्च विलम्ब तम-अज्ञान के अपहरण में
अतएव तुमको उचित है जाओ उन्हीं की शरण में।
वे ज्ञान-रूपा बुद्धि-दायिनि तुम्हें चिन्तन-शक्ति दें
हर मोह सारा निज-पगों की भक्ति में अनुरक्ति दें॥

जो स्वामिनी स्वर्गीय सुख की दायिनी भवभुक्ति की
अपहारिणी अघ दुःख की अधिकार दात्री मुक्ति की॥
वे सर्वशक्ति समन्विता अति-शीघ्र अब करके कृपा
सुख-शान्ति सविता दान दें कर दूर दुख तममय क्षपा॥

श्रवण कर ऋषि का शिव आदेश
झुका माँ के चरणों में शीश।
चल पड़े तत्क्षण सुरथ-समाधि
सँजोकर उर में सुख-वारीश॥
नदी के रम्य-पुलिन के तीर
जहाँ तरुओं की शीतल-छाँह।
विमल - सरिधारा का कल - नाद
वहाँ पहुँचे समाधि - नरनाह॥
जगत के माया-बन्धन तोड़
लोकजीवन से निज मुख मोड़।
तपश्चर्या में दोनों भक्त
लगाने लगे परस्पर होड़॥
उरों में थी केवल यह आश
कटें अज्ञान-तिमिर के पाश।
भगवती होकर अब प्रत्यक्ष
कृपा कर आयें शीघ्र समक्ष॥
रची देवी की मनहर-मूर्त्ति
मृत्तिका से तट पर तत्काल।
जुटे सेवा में सुरथ - समाधि
यजन-अर्चन करके त्रयकाल॥
जाप कर उत्तम देवी-सूक्त
लगे करने प्रतिदिन उपवास।
चित्त अर्पित कर भक्ति-निमित्त
सुखाने लगे देह का माँस॥
कठिन तप-व्रत में जब इस भाँति
तीन संवत्सर हुये व्यतीत।
ध्वनित तब हुई भक्ति की बीन
चतुर्दिक् गूँजा मृदु-संगीत॥

जगत् - जननी होकर प्रत्यक्ष
लगीं कहने भक्तों लो माँग।

चाह हो जो कुछ, मुझसे कहा
तृप्त हूँ, दूँगी तुमको आज॥
भगवती दुर्गा से उस काल
सुरथ ने माँगा अक्षय - राज।
बुद्धि - वैभव - सम्पन्न समाधि
माँगने लगे भक्ति-वैराग॥

देवि ने होकर परम-प्रसन्न
दिये उनको इच्छित-वरदान।
सुरथ को अक्षय - विभव - विलास
सुस्थिर-चित समाधि को ज्ञान॥
भक्ति का करके यों सम्मान
हुई जगदम्बा अन्तर्ध्यान।
विश्व में गूँज उठा सर्वत्र
पुनः जग-जननी का जयगान॥
लेखनी! जब तक तुझमें शक्ति
सतत कर माँ-महिमा अनुरक्ति।
जहाँ भी जिव्हा अपनी खोल
देवि-दुर्गा की ही जय बोल॥

* * *

याचना

कब मन्त्र मातु! तेरा मैं जान पाया
कब यन्त्र का पता माँ! किसको मिला है।
आह्वान - ध्यान - अर्चन - वन्दन क्रियायें
अज्ञात है मुझे माँ! तव-स्तवन तक॥

अज्ञात हैं सभी मुद्रायें तुम्हारी
कर आर्त्तनाद माता! न पुकार पाता।
पर जानता जननि! मैं सुमिरन तुम्हारा
सारे कलेश हरता है भक्त-जन के॥

अज्ञात है सकल-पद्धति अर्चना की
धनहीन हूँ प्रमादी असमर्थ जन मैं।
कब कौन जान पाया महिमा तुम्हारी?
जो कर सके त्रुटि-रहित अर्चन-क्रियायें॥

अतएव क्षम्य हैं माँ! भूलें हमारी
जो हो रहीं निरन्तर अज्ञानता-वश।
मैं हूँ कुपुत्र माता! पर सुत तुम्हारा
कल्याण-कारिणि जननि! कल्याण कर दो॥

जग में असंख्य सुत हैं माता! तुम्हारे
जो हैं सरल पर विरल सुत मैं चपलतम
है प्रार्थना जननि! पग पकड़े रहूँ मैं
पाता रहूँ कृपा चरणों की निरन्तर॥

शिवरूपिणी! किया क्यों यों त्याग मेरा
मैं भीत-त्रस्त जग-जल के जन्तुओं से
अब आर्त्तनाद करता तुमको बुलाता
माँ! शीघ्र कष्ट हर ले इस पुत्र का भी॥

जगदम्बिके! तुम्हारी पग-अर्चना तक
सम्भव हुई न जग में इस दास द्वारा।
तुमने दिया कर कृपा जो द्रव्य हमको
वह भी किया न अर्पण तुमको कृपण ने॥

फिर भी शिवे! तुम्हारी मुझ पर कृपा जो
वह सहज-स्नेह- सिञ्चित आशिष तुम्हारा।
मेरी समस्त त्रुटियाँ माता! क्षमा कर
मैं हूँ कुपुत्र माता! पर तुम सुमाता॥

जग में अनेक देवों की वन्दना में
सम्भव नहीं अब रहीं अर्चन- क्रियायें।
अतएव त्याग सबका आराधना-पथ
आया शरण तुम्हारी माँ! सुत तुम्हारा॥

है कट रही निरन्तर डोरी उमर की
माँ! अब विलम्ब मत कर, कर आश पूरी
अब भी कृपा न माता! यदि मिल सकी तो
किसकी शरण गहेगा सुत यह तुम्हारा॥

जग में कृपा मिले यदि माता! तुम्हारी
तो मूर्ख व्यक्ति भी हैं विद्वान बनते।
हे यशमयी! तुम्हारे यश की कथा कह
कल कंठ से जयति-जय उच्चारते हैं॥

धनहीन जो सशंकित रहते जगत में
पाकर कृपा तुम्हारी निर्भय विचरते।
करते विहार वैभव की वीचियों में
रहते कनक-रचित उन्नत सौध में वे॥

जननी! अपार भू पर महिमा तुम्हारी
जन कौन जान पाया जपविधि जगत में।
पद एक भी श्रवण-पथ में आ पड़े तो
सारे कलेश मिटते कहते ऋषीगण॥

भगवान-भूत-भावन की कीर्ति-लतिका
माता! हरी-भरी है तेरी कृपा से।
तन पर मनुज-चिता की भस्मी रमी है
विष का अशन वदन पर मृगछाल शोभित॥

सिर पर जटायें, दिव्य-किरीट सी हैं
है नागहार राजित उर पर सुशोभन।
कर में कपाल धारी पशुपति महेश्वर
जगदीश हैं कहाते तेरे वरण से॥

माता! दिया है तुमने सब कुछ हमें पर
सन्तान-हीन अब तक क्यों कर रखा है?
धन - मान - ज्ञान - वैभव सारी प्रतिष्ठा
जलहीन कुम्भ सी है सुत बिनु जगत में

आँचल पसार कर माँ! नित माँगता हूँ
जननी! कृपामयी! तू, अब तो कृपाकर।
सूने हृदय-निलय में झन्कार भर दे
कर दे प्रकाश माता! नैराश्य-निशि में॥

सूखी हरी-भरी यदि कुल-वल्लरी तो
माँ! कौन फिर करेगा सेवा तुम्हारी।
विश्वास के किले की दीवार-दृढ़ यों
ढह गयी अगर तो महिमा घटेगी॥

माँ! आज लाज रख ले अपने कथन की
तूने दिया वचन जो निज भक्त जन को।
"मम भक्तगण रहेंगे निर्विघ्न जग में
धन-धान्य - पुत्र-युत हो सुख से धरा पर॥"

भय-हारिणी! अभय कर हर कष्ट सारे
तुमसे पुनः पुनः यह विनती हमारी।
त्रैलोक्य पूजित- शिवे! सबको सुखी कर
जग में अनाथ जितने सारे तुम्हारे॥

राजा करें प्रजा-पालन न्याय-पथ से
हो योग-क्षेम सबका तेरी कृपा पा।
सारे द्विपद-चतुष्पद खग-मृग प्रकृति के
सुख से करें बसेरा गुणगान गायें॥

बरसें जलद समय पर संताप हर हों
हो हरी-भरी धरती फल-फूल राजित।
मिट जाय क्षोभ जग से हर- मन मुदित हो
निर्भय रहें धरा पर सेवक तुम्हारे॥

जगदम्बिके! दया से तेंरी जगत के
संतानहीन सारे संतान पायें।
धनहीन हों धनी माँ! सब हों निरोगी
फूले-फले धरा पर यश-बेलि तेरी॥

तेरा अबोध सुत मैं माता! बुलाता
जननी! पुकार सुन ले अब तो हमारी।
है डूबती भँवर में नैय्या भगत की
ओ वत्सले! कृपा कर, कर पार हमको॥

मेरे समान पामर जग में नहीं है
तेरे समान उद्धारक माँ! कहाँ पर।
यह जानकर शिवे! अब लेकर शरण में
सब पाप-ताप हर ले माता! दया कर।

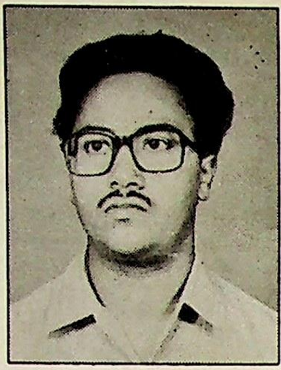
इति —

२६ जनवरी, १९९६
होशंगाबाद - म.प्र.

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

कवि-परिचय



(डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र)

- **जन्मतिथि -** २ जून, १९६२ ईसवी।
- **जन्मस्थान -** पीलीभीत - उ.प्र.
- **माता-पिता -** श्रीमती माया देवी मिश्रा, श्री भगवत शरण मिश्र
- **पत्नी -** श्रीमती संगीता रानी मिश्रा।
- **जाति -** हिन्दू सनाढ्य ब्राह्मण / कश्यपगोत्र।
- **मूल निवास -** ५७, मोहतिशम खां, पीलीभीत (उ.प्र.)
- **शैक्षिक विवरण-** मा.शि. परि. उ.प्र. से हाई स्कूल व इण्टर प्रथम श्रेणी में। रुहेल खण्ड विश्व विद्यालय, बरेली उ.प्र. से बी.ए. (द्वितीय श्रेणी), एम.ए. अंग्रेजी (तृतीय श्रेणी), एम.ए. हिन्दी (प्रथम श्रेणी व विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान), पी.एच.डी.। बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालय वाराणसी से एल.टी.।
- **पुरस्कार-** रुहेल खण्ड विश्व विद्यालय, बरेली व हिन्दी व्यवहार संगठन, बरेली द्वारा पुरस्कृत।
- **रचनायें - क. शोधपरक -** 'खड़ी बोली प्रबंध-काव्यों में सीता वनवास' (शोध प्रबंध); 'अवध विलास एक अध्ययन', 'रामकाव्य का इतिहास'।
  ख. काव्य-संग्रह - 'निर्भयस्वर', 'जाने पहचाने चेहरे', 'जन के पत्र तंत्र के नाम', 'प्रणयगीत' कसक, पुकार।
  ग. खण्डकाव्य - 'मर्यादा-पुरुषोत्तम', 'धर्म - विजय', 'झलकारीबाई'।
  घ. महाकाव्य - 'लीला-पुरुषोत्तम' 'सारन्धेय' 'स्वातन्त्र्य वीर' 'गांगेय'।
  ड. स्फुट प्रकाशन - 'राष्ट्र धर्म' (लखनऊ), 'मानस चन्दन' (सीतापुर) 'मानस भारती' (भोपाल) देशबन्धु (बिलासपुर) आदि।
- **सम्प्रति -** हिन्दी-विभागाध्यक्ष (स्नातकोत्तर विभाग), शासकीय कुसुम महाविद्यालय, सिवनी मालवा, होशंगाबाद, म.प्र.।